Chapter-4

अध्यायः 4 :: आर्थिक समस्याएँ ::

:: अध्याय : 4 ::

:: आर्थिक समस्याएं ::

यह तो एक सर्वमान्य तथ्य है कि किसी भी युग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक गतिविधियां अर्थ-सत्ता द्वारा निश्चित व नियंत्रित होती रहती हैं। "सर्वे गुणाः कांचनं आश्रयन्ते" या "समरथ को दोष नाहिं गुसाईं" जो कहा गया है, उसके पीछे अनुभव का निचोड़ है, जिसे नकारा नहीं जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक ने आधुनिक युग में वणिक-वृत्ति के प्रसार का संकेत दिया है। मनुष्य और जातियों के बहुत से कार्य-कलापों की वल्गा अर्थ-चेतना के हाथों में हैं। पूर्ववर्ती विवेचन में यह निर्दिष्ट किया गया है कि पारिवारिक विघटन की प्रक्रिया, अब गांवों में भी शुरू हो गई है, क्योंकि स्वार्थ-केन्द्री व्यक्तिवादी चिंतन अब वहां भी जोर पकड़ रहा है, तो उसके मूल में भी यही आर्थिक चेतना की प्रबलता कारणभूत है। आर्थिक-दबावों से त्रस्त, धर्मवीर भारती के "सूरज का सातवां घोड़ा" का माणिक भी व्यक्ति की चिंतन-प्रवृत्ति पर मात्र आर्थिक व्यवस्था का ही स्वीकार करता है — "प्रेम आर्थिक-स्थितियों से अनुशासित होता है।"[1] इधर नैतिकता से संबंधित प्राचीन मानदण्डों को एकांगी मानकर जो नवीन दृष्टि से विचार हो रहा है, उसके मूल में भी आर्थिक विसंगतियों से उत्पन्न आक्रान्तक स्थितियां ही हैं। `मनुष्य के रूप` की सोमा तथा `झूठा सच` की उर्मिला आर्थिक दृष्टया आत्मनिर्भर होकर ही विधवा-जीवन की पुरातन खोखली धारणाओं की उपेक्षा करने का साहस जुटा पाती हैं।

इधर पिछड़े वर्ग के लोगों में भी जो यत्किंचित आत्म-चेतना के दर्शन होते हैं, उसमें भी आर्थिक-ध्रुवों के कुछ परिवर्तन को लक्षित किया जा सकता है। "जल टूटता हुआ" का जगपतिया चमार अब महीपसिंह से यह कहने का साहस जुटा पाया है कि "बबुआ, गाली मत दीजिए। रमपतिया नौकरी पर गया है तो क्या हो गया? नौकरी नहीं करेंगे तो हम लोग खायेंगे क्या?"[2]

जगपतिया का बेटा अब शहर में नौकरी करने लगा है । उसके कारण रोजी-रोटी के लिहाज से यह परिवार अब महीपसिंह जैसे जमींदारों पर निर्भर नहीं रहा । यही कारण है कि जगपतिया अब महीपसिंह के सामने मुंह खोलने का साहस जुटा पाया है । पुरानी स्थिति में यह संभव नहीं था । जहां-जहां औद्योगीकरण बढ़ रहा है, वहां-वहां ग्रामीण मजदूरी अप्राप्य एवं महंगी होती जा रही है, और इन मेहनतकश लोगों के आर्थिक स्तर में थोड़ा-बहुत सुधार होता जा रहा है, और उसी अनुपात में उनकी कुंठित आत्म-चेतना भी जागृत हो रही है । इसी उपन्यास की हरिजन-कन्या लवंगी के तेज़ तेवरों के पीछे इन्हीं स्थितियों को तलाशा जा सकता है — " हरिजनों के नेता, मैं तुम से फरियाद करती हूं कि वोट लेने वाले नेताओं से जाकर कहो कि हमारा खून- खून नहीं है, हमारी इज्जत - इज्जत नहीं है, तो हमारा वोट ही वोट क्यों है ? " [3] डा० राही मासूम रज़ा के उपन्यास "आधागांव" का रमजान जुलाहा भी अब अपने चौक के सामने पाखाना बनवाता है । पहले निम्न जातियों के लोग अपने घर के सामने पाखाना भी नहीं बनवा सकते थे । रज़ा के ही एक अन्य उपन्यास "दिल एक सादा कागज" में निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा पाखाना बनाने पर बावेला मचता है और मामला कोर्ट तक पहुंचता है । अब रहमत जुलाहा का लड़का अलीगढ़ में पढ़ता है और सैयदजादी कामिला से इश्क फरमाने का साहस जो जुटा पाया है, उसके पीछे भी यही बदली हुई स्थितियां काम कर रही हैं ।

जगदीशचन्द्र के उपन्यास "धरती धन न अपना" के काली का प्रत्यक्षतः अपमान करने की हिम्मत चौधरी हरनामसिंह में नहीं है, क्योंकि काली आर्थिक दृष्टया कुछ संपन्न स्थिति में आ गया है । गांव का महाजन छज्जू शाह भी अब उसकी इज्जत करता है, क्योंकि वह शक्कर पीता है और गेहूं की रोटी खाता है । "गेहूं की रोटी खाना" भी निम्नवर्गीय लोगों में एक विशिष्ट "स्टैटस" को संकेतित करता है, जैसे "स्टोव" पर खाना पकाना ।

अतः कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से जो लोग कमजोर होते हैं, वे ~~सम्मसि~~ सामाजिक दृष्टि से भी कमजोर हो जाते हैं । "धरती धन न अपना" में गांव के चौधरियों के खिलाफ बेगार न करने के संबंध में जो आंदोलन छिड़ता है, उसमें थोड़े समय में ही उनके हौसले पस्त हो जाते हैं

क्योंकि गांव के सारे चमार , आर्थिक दृष्टया चौधरियों पर निर्भर हैं । दूध , चाय , लस्सी जैसी चीजों के लिए लोग तरस जाते हैं । जब आंदोलन होता है , तब गांव की नाकाबंदी होती है और उन्हें कुदरती हाजत तक के लिए खेतों में नहीं जाने दिया जाता । गांव की जमीन तो सब चौधरियों की है , बेचारे चमार जाए तो कहां ? दूसरी तरफ चौधरियों का बड़ा नुकसान हो रहा था । अतः आंशिक रूप से चमारों की बात मान ली जाती है , और दोनों में समझौता हो जाता है । यदि घोड़ेवाहा गांव के चमार आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होते , तो परिणाम कुछ और आता । काली को भी अन्ततः गांव छोड़कर भाग जाना पड़ता है , और अन्त में जो आत्महत्या तक की नौबत आती है , उसके पीछे भी आर्थिक कारण है । पैसे चोरी हो जाने से काली पुनः विपन्न अवस्था में आ जाता है । यदि आर्थिक दृष्टि से संपन्न होता तो ज्ञानो से विवाह करने में भी कोई आपत्ति नहीं होती क्योंकि पैसे की ताकत के आगे प्रायः सभी झुक जाते हैं ।

दरिद्रता की समस्या :- दरिद्रता की समस्या हमारे यहां प्राचीन काल से चली आ रही है । शहरों की तुलना में गांवों में दरिद्रता का प्रमाण अधिक है , क्योंकि "राग दरबार" के लेखक श्रीलाल शुक्ल के शब्दों में "शहर में हर दिक्कत के आगे एक राह है और देहात में हर राह के आगे एक दिक्कत है । " [4] इसी उपन्यास के गयादीन गांव के लोगों की विवशताओं के संबंध में रंगनाथ को बताते हुए कहते हैं — " रंगनाथ बाबू , तुम शहर के आदमी हो । शहर में हर बात का जवाब होता है । मान लो कोई आदमी मोटर से कुचल जाय , तो कुचला हुआ आदमी अस्पताल पहुंच जायेगा । अस्पताल में डाक्टर बदमाशी करे तो उसकी शिकायत हो जायेगी । शिकायत सुनने वाला चुप बैठा रहे तो दस-पांच लफंगे जुलूस निकाल देंगे । उस पर कोई लाठी चला दे तो लोग जांच बैठवा देंगे । तो वहां हर बात की काट आसानी से निकल आती है । इसीलिए वहां मजबूरी की मार नहीं जान पड़ती । .... और यहां गांव में क्या ~~है~~ है ? कोई मोटर से कुचल जाय तो मोटर वाला रफू-चक्कर हो जायेगा । कुचला हुआ आदमी कुत्ते की तरह पड़ा रहेगा । अस्पताल में अगर कोई डाक्टर हुआ भी तो पानी की बोटल पकड़ाकर

कहेगा कि लो भाई राम का नाम लेकर पी जाओ । राम का नाम तो लेंगे ही, क्योंकि उनके पास देने के लिए दवा ही नहीं होगी । होगी भी तो, चुराकर बेचने के लिए पहले ही निकाल कर रख ली गई होगी । "[5]

उक्त कथन में व्यंग्यात्मकता के साथ ही सही, पर भारत के गांवों की बदहाली व दरिद्रता के कारणों का कुछ संकेत मिलता है । हमारी गरीबी भ्रष्टाचारी व्यवस्था द्वारा निर्मित गरीबी है । अन्यथा क्या कारण है कि द्वितीय विश्व-युद्ध में विनष्ट हो चुके ऐसे जर्मनी-जापान पुनः समृद्ध हो गए हैं, और हम आज भी भीख की हांडी लिए-लिए घूम रहे हैं । इजरायल हमारे बाद आज़ाद हुआ, उसे मिट्टी तक बाहर से आयात करनी पड़ती है, पर केवल फूलों की खेती से करोड़ों का "फारीन-एक्सचेन्ज" प्राप्त कर लेता है । प्राकृतिक संसाधनों की हमारे पास कमी नहीं है । किसी ने बिलकुल ठीक कहा है कि "इण्डिया इज़ ए रीच लेण्ड व्हेर पुअर पिपुल लीव" । ऐसा नहीं है कि काम नहीं होता । आज़ादी के बाद खूब काम हुआ है । अनेक विकास-योजनाएं हुई हैं । उद्योग-धंधे बढ़ रहे हैं । तो पैसा कहां है? सारा माल कहां है? उत्तर है — भारत के कुल जमा 150-200 परिवारों में यह सब संपत्ति आबंटित है । बाकी लोग उनका मुंह तक रहे हैं । नौकरी-पेशा बुद्धिजीवी वर्ग के लोगों को वे कुत्तों की तरह टुकड़े डाल देते हैं, सो वे भी खुश हैं और बाकी लोग गरीबी की मार से कसमसा रहे हैं । जो स्थिति पूरे भारतवर्ष की है, वहीं स्थिति गांवों की भी कमोबेश रूप में है । हर गांव में दो-चार बड़े जमींदार, महाजन या नव-धनिक वर्ग के लोग रहते हैं, जो माल-टाल उड़ाते हैं और बाकी लोग उनकी गौरव-गाथाएं गाते हुए धूल फांकते रहते हैं । "राग दरबारी" के वैद्यजी, गयादीन तथा रामाधीन भिखमखेड़वी; "जल टूटता हुआ" के महीपालसिंह तथा दीनदयाल; "सूखता हुआ तालाब" के शिवलाल, श्यामदेव, कामरेड़ मोतीलाल; "धरती धन न अपना" के हरनामसिंह चौधरी, चौधरी मुंशी, छज्जू शाह; "अलग अलग वैतरणी" के जैपालसिंह, बुझारथ-सिंह, सुरजूसिंह; "मैला आंचल" के तहसीलदार साहब आदि ऐसे ही लोग हैं, जिनके पास समूची ग्रामीण संपत्ति संग्रहीत है; बाकी लोग तो उनकी "प्रजा-पौनी" है, जिन्हें मिली ज़िन्दगी को किसी तरह पूरा करना है ।

भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास "सत्ती मैया का चौरा " में मन्ने स्पष्ट शब्दों में कहता है — " आज़ादी के बाद जो उम्मीदें वे बांधे हुए थे , उनमें क्या एक भी पूरी हुई है ? .... तुम किसी भी किसान या मज़दूर को ले लो , उसके घरको जाकर देखो , उसके तन के कपड़े देखो , उससे पूछकर समझो कि उसमें क्या परिवर्तन आया है ? जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेसी नेताओं ने उनकी जगह ले ली है और किसानों पर वे उन्हीं की तरह हकूमत करते हैं । " [6] "धरती धन न अपना " में लेखक ने इसी आर्थिक-असमानता को स्वर दिया है । स्वयं लेखक के शब्दों में — " आर्थिक अभावों की चक्की में युग-युगांतरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं, जिस भूमि पर वे रहते थे , जिस जमीन को वे जोतते थे , यहाँ तक कि जिन छप्परों में वे रहते थे , कुछ भी उनका नहीं था । इन्हीं बातों को देखकर मेरे किशोर-मन की वेदना सहसा अपने सभी बांध तोड़कर फूट निकली और मैंने उपेक्षित हरिजनों के जीवन का चित्रण करने का संकल्प कर लिया । प्रस्तुत उपन्यास लिखने का मूल प्रेरणा-बिंदु यही है । " [7]

नागार्जुन के उपन्यास "बलचनमा" का बलचनमा जीवन के कटु यथार्थों से जूझते हुए क्रान्तिकारी बन जाता है । बलचनमा में हमें गोबर से भी तीखे तेवर मिलते हैं । गांवों में गरीब लोगों का शोषण धर्म , भाग्य , कर्मफल , भगवान आदि के नाम पर होता है । परन्तु बलचनमा अपने पुरखों की तरह आस्थावादी नहीं है । वह तो खुले-आम कहता है — " भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गुदा चुर-चुर कर फांकती है , यह भी भगवान ठीक करते हैं । और सरकार कनक जीर और तुलसीफूल से खुशबूदार भात , अरहर की दाल , परवल की तरकारी , घी , दही , चटनी खाते हैं , सो भी भगवान की ही लीला है । "[8] बलचनमा के उक्त कथन से गांवों में चल रही शोषण-प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है । वह तो स्पष्ट कहता है — " फूलबाबू के बाप इन्हीं गरीबों की जमीन-जायदाद हड़प-हड़प कर औकात वाले बने हैं । " [9]

वस्तुतः बन्धुआ मजदूरों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध एक सामूहिक आवाज़ है — " बलचनमा " उपन्यास । जिस जमींदार ने

बलचनमा के पिता की पिटाई की थी , और जिसके कारण उसने दम तोड़ दिया था , उसीका बेटा फूलबाबू अब नमक -कानून तोड़ने जा रहा है , तो इसलिए नहीं कि उसे "सुराज" लाना है , बल्कि इसलिए कि आनेवाले स्वराज्य में अपना एक सुनिश्चित स्थान बनाना है , ताकि शोषण का एक नया चक्र शुरू किया जा सके । इस ऐसे एक विशिष्ट वर्ग से जुड़े हुए वर्गीय पक्षधर भारत के कर्णधार बने और इस प्रकार भारत की गरीब जनता के शोषण की मुहिम को थोड़ा और आगे खिसका दिया गया । बलचनमा का यह कथन आज सन् 1991 या 1992 में भी उतना ही सत्य है , जितना तब था — " जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं , हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे हैं , उसी तरह जन-बनिहार मजदूर और बहिखवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू-भैया लोगों से लड़ना पड़ेगा । " 10

हरिशंकर परसाई ने इसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्रण करते हुए लिखा है — " स्वतंत्रता-प्राप्ति को कुछ लोग महज सत्ता का हस्तांतरण कहते हैं — ट्रान्सफर आफ पावर , पर सच पूछा जाय तो यह"ट्रान्सफर आफ डिश " है । पहले भारत को अंग्रेज लोग छुरी-कांटे से खाते थे । खाते-खाते वे अघा गए । तब देशी खाने वालों ने कहा , अब बाकी बचा भारत , हमें भी खा लेने दो । अंग्रेजों ने कहा ठीक है , हमें तो दस्त लगने लगे हैं , हम तो जाते हैं , अब इसे ये देशी सलाद व अचार से खा रहे हैं । यह घटना सन् 1947 में हुई थी । " 11 तभी तो कहा गया है —

" लड़ते लड़ते मर गया , सैंतालीस में देश ।
गिदड़ गीध चबा रहे , बदल कबिरा भेश ।। " 12

या

" गांधी तेरे देश में , वायु विषम फुंकाय ।
चन्द चाऊ चटोरिये , चंगा देश चलाय ।। " 13

"मैला आंचल " में रेणु इस प्रवृत्ति को बहुत पहले ही लक्षित कर चुके थे । एक जमाने में जो अंग्रेजों के पक्षकार थे , जो दारू का पीठा चलाते थे , जो गरीबों का शोषण करते थे , ऐसे ही लोग अब मुखौटा बदलकर , राजनीति में /कांग्रेस में प्रवेश पा रहे थे , जिसका चित्र हमें बावनदास की मनोव्यथा में

मिलता है । पहले जो भारत माता विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त हो रही थी, अब वह अपने ही बेटों द्वारा क्षत-विक्षत होकर "जार-बेजार रो रही है । "[14]

संक्षेप में तात्पर्य यह कि स्वाधीनता के उपरान्त जिस समाजवादी समाज-रचना की बातें चल रहीं थीं, वे केवल बातें ही रहीं । अमीर अमीर होते गये, गरीब गरीब । जो पहले शोषण करते थे, वे आज भी शोषक हैं । पहले वे अँग्रेजों को खुश करके शोषण का पट्टा लिखवा लेते थे, अब अपने ही वर्ग के, या अपने ही, सत्ता-वर्ग के लोगों को प्रसन्न रखकर यह सब किया जा रहा है । फलतः गरीबी अमरवेल की तरह बढ़ रही है । "राग दरबारी" में श्रीलाल शुक्ल ने इसका व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रण करते हुए लिखा है — " वैद्यजी थे, हैं और रहेंगे । अँग्रेजों के जमाने में वे अँग्रेजों के लिए श्रद्धा दिखाते थे । देसी हुकूमत के दिनों में वे देसी हाकिमों के लिए श्रद्धा दिखाने लगे । वे देश के पुराने सेवक थे । "[15]

<u>गरीबी की ~~xxxxxx~~ विभावना तथा उसके कारण</u> :- गरीबी या निर्धनता एक सापेक्ष शब्द है । अर्थात् एक देश में जिसे हम गरीब कहेंगे, उसे दूसरे देश में धनवान भी कहा जा सकता है । गांव की दृष्टि से जो धनवान है, शहर की दृष्टि से वह गरीब भी हो सकता है । उसी प्रकार एक जाति-विशेष में जो व्यक्ति धनवान माना जाता है, दूसरी जातियों की तुलना में वह गरीब भी हो सकता है । " धरती धन न अपना " का काली इसलिए संपन्न माना जाता है कि वह शक्कर पीता है और गेहूं की रोटी खाता है । ईंट और मिट्टी के गारे का पक्का मकान {9} बनवाता है । वह शहर से कुछ कमाकर आया है । वह रकम दूसरे लोगों की तुलना में बहुत छोटी है, परंतु जहां दस का नोट भी लोग देखने को तरस जाते हों, वहां इस रकम को बड़ी ही माना जाएगा । अतः प्रतापी चाची उसमें से एक दस का नोट लेकर छज्जू शाह के यहां शक्कर लेने जाती है, तब छज्जू शाह विस्फारित नेत्रों से प्रतापी चाची को देखता है, क्योंकि प्रतापी चाची के हाथ में दस का नोट होना तथा उनके द्वारा शक्कर मांगना ये दोनों बातें छज्जू शाह को अप्रत्याशित-सी लगती हैं । इस दस के नोट की वजह से ही छज्जू शाह काली को "बाबू कालिदास" कहता है ।[16] उपन्यास

में प्राप्त चीज-वस्तुओं के दाम के अंतर्साक्ष्य के आधार पर कदाचित उसमें निरूपित काल आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व का है , परन्तु उसकी समस्या आज भी उतनी ही चिन्तनीय है । दस के नोट का स्थान अब सौ का नोट ले सकता है , पर इससे स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है ।[17]

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व समाजशास्त्री गिलिन और गिलिन के अनुसार "गरीबी वह दशा है जिसमें एक व्यक्ति या तो अपर्याप्त आय अथवा मूर्खतापूर्ण व्यय के कारण अपने जीवन-स्तर को उतना ऊंचा नहीं रख पाता कि उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उसके आश्रितों को अपने समाज के स्तर के अनुसार उपयोगी ढंग से कार्य करने के योग्य बनाये रख सके ।"[18] गोडार्ड ने इसे और भी स्पष्ट करते हुए कहा है — " गरीबी उन वस्तुओं की अपर्याप्त पूर्ति की दशा है जिनकी एक व्यक्ति को अपने तथा आश्रितों के स्वास्थ्य एवं शक्ति को बनाए रखने के लिए आवश्यकता होती है । "[19] अंतिम गणना के अनुसार विश्व की जनसंख्या 400 करोड़ है , जिनमें 100 करोड़ लोग अत्यंत गरीब हैं । इनमें 33.9 करोड़ गरीब लोग केवल भारत में है जो उसकी कुल आबादी का 42.5 प्रतिशत है ।[20] शहरी स्लम-विस्तार तथा गांवों में ये गरीब पाए जाते हैं । सामान्यतः गांवों के निर्धन लोगों में अनुसूचित जाति व जनजाति , भूमिहीन मजदूर , लघु और सीमांत कृषक , कारीगर एवं पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों को परिगणित किया जा सकता है ।

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं समाजविद् प्रो० फेरिस[21] तथा गिलिन और गिलिन के अनुसार गरीबी के लिए अनेक वैयक्तिक, प्राकृतिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं:- /1/ वैयक्तिक कारण , /2/ भौगोलिक कारण , /3/ सामाजिक कारण , /4/ राजनीतिक कारण , /5/ सांस्कृतिक कारण , /6/ बढ़ती हुई जनसंख्या , /7/ बेकारी , /8/ कृषि का पिछड़ापन , /9/ जमींदारी प्रथा , /10/ साहूकारी प्रथा , /11/ सामाजिक कुप्रथाएं , /12/ अज्ञानता और अशिक्षा , /13/ प्राकृतिक साधनों का अपूर्ण दोहन , /14/ आलस्य और निष्क्रियता , /15/ नरम राज्य /सोफ्ट स्टेट/ , /16/ सुधार-नीतियों की असफलता तथा /16/ औद्योगीकरण और पूंजीवाद ।

गरीबी से संबंधित उक्त कारण भी एक-दूसरे से प्रतिबद्ध होते हैं, जैसे गरीबी कई बार व्यक्तिगत कारणों का परिणाम होती हैं है, परन्तु उन व्यक्तिगत कारणों की पड़ताल करने पर ज्ञात होता है कि उनके लिए भी कतिपय सामाजिक, सांस्कृतिक या राजनीतिक कारण होते हैं। "नदी फिर बह चली" का जगलाल पटना जाकर ड्राईवर बन जाता है, और अपनी कहार जाति के दूसरे युवकों से कुछ अधिक कमाने लगता है। परन्तु अशिक्षा, जुआ, वेश्यागमन जैसे दूषणों के कारण फिर वही ढाक के तीन पात वाली स्थिति में आ जाता है, क्योंकि जाति-कुण्ठा और अर्थ-कुण्ठा उन्हें दबोचे हुए रहती है। जवाहरसिंह के उपन्यास " एक टूटा हुआ आदमी " का धर्मनाथ जब गांव जाता है, तब गांव का स्टेशन से फासला तथा सामान के अधिक न होने पर भी तांगा करता है, क्योंकि जो लोग अभी तक उसे हिकारत की दृष्टि से देख रहे थे, उन्हें वह दिखा देना चाहता है। " नदी फिर बह चली " का जगलाल भी अपनी पत्नी परबतिया के लिए पावडर, क्रीम इत्यादि सौंदर्य-प्रसाधन की चीजें ले जाता है, जबकि आम तौर पर गांवों में इनका प्रचलन नहीं है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उपेक्षित लालसाओं को थोड़ी-सी उनमुक्तता मिल जाने से उनमें स्वच्छन्दता पनपने लगती है, जो अंततोगत्वा उन्हें पतनगामी बनाती हैं। जगलाल यदि कहार न होता, तो पहली बात तो ड्राईवर न बनता कुछ और बनता, और यदि कुछ और बनता, तो वह सब न हुआ होता जो बुरी संगत तथा माहौल के कारण हुआ. क्योंकि Elliott & Merill के अनुसार कुछ occupation तथा Bad Housing and Lack of Recreation के कारण भी शराबनोशी की आदत को बढ़ावा मिलता है।[22]

"धरती धन न अपना" का काली जहां पक्का मकान बनाने की धुन में फिर खेत-मजदूरों की पंगत में आ जाता है, वहां "हौलदार" उपन्यास का डुंगरसिंह शारीरिक दृष्टि से क्षतिग्रस्त होते हुए भी दुकान लगाकर दो-पैसे कमाने की सोचता है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जातिगत प्रभाव व्यक्ति की गरीबी या अमीरी को कैसे प्रभावित करते हैं।

कुछ भौगोलिक कारण भी दरिद्रता के लिए उत्तरदायी होते हैं। कुछ पहाड़ी प्रदेश अन्य मैदानी प्रदेशों से कटे हुए रहते हैं, अतः वहां के

लोगों में महत्त्वाकांक्षा का प्रायः अभाव होता है । "हौलदार" , "चिट्ठीरसैन" तथा "नागवल्लरी" जैसे उपन्यासों में इसे लक्षित किया जा सकता है । उड़ीसा के ग्रामीण लोगों का मुख्य आहार चावल है । चावल से मछली खायी जाय तब तो ठीक है , अन्यथा पेट में पहुंचकर वह आल्कोहोलिक द्रव्यों को उत्पन्न करता है , जिसके कारण व्यक्ति प्रायः अलसाया हुआ रहता है । मणिपुर तथा कुछ पूर्वांचलीय प्रदेशों में के पानी में फ्लोराइड के तत्वों की अतिरेकता के कारण वहाँ के पुरुष प्रायः निष्क्रिय रहते हैं । यहाँ कारोबार प्रायः स्त्रियाँ संभालती हैं । "साँप और सीढ़ी" की धान मर्ँ उसका उदाहरण है । यहाँ का पुरुष एक-दो मछली पकड़कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है ।

सामाजिक कारणों का विश्लेषण तो पूर्ववर्ती पृष्ठों में एकाधिक स्थानों पर कर चुके हैं , तथापि कुछ बातों पर विचार करना यहाँ उपयुक्त रहेगा । जातिप्रथा एवं परंपरागत व्यवसाय-पद्धति के कारण समाज में जो स्तरीयता स्थापित हुई , उसमें संपत्ति का वितरण समान रूप से नहीं हुआ । वरीयता के क्रम में जो जातियाँ ऊपर हैं , वहाँ क्रमशः संपत्ति का संचयन होता रहा और दूसरी जातियाँ गरीबी के कारण पशुवत जीवन जीने के लिए विवश होती रहीं । जो देश में , वही गाँवों में भी दृष्टिगत होता है । जैसे देश की संपत्ति कुछ इने-गिने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में सिमटकर रह गयी है , वैसे ही प्रत्येक गाँव में कुछ इने-गिने लोग होते हैं , जो गाँव की तमाम संपत्ति पर कुण्डली मार कर बैठ गए हैं । सामाजिक रीति-रिवाज , मान्यताएँ तथा जड़-पुरानी रूढ़ियाँ भी इस परंपरागत दरिद्रता में इज़ाफा करती हैं । हिमांशु श्रीवास्तव के उपन्यास " नदी फिर बह चली " की परबतिया मेले में खो जाती है । दो बदमाश उसका पीछा करते हैं , परन्तु सद्भाग्य से एक अच्छे परिवार में उसे आश्रय मिल जाता है । अतः दो-एक दिनों में वह अपने परिवार में कुशल-क्षेम लौट आती है , परंतु सौतेली माँ के बुरे व्यवहार के कारण उसकी बदनामी हो जाती है । फलतः उसके पिता साधू मेहतो के यहाँ पंचायत बैठती है । पंचों के लिए गांजा, भाँग , खइनी , और बीड़ी-तंबाकू का इन्तजाम मेहतो को ही करना पड़ता है । अंत में पंचायत पाँच रुपया जुर्माना और बिरादरी के सभी लोगों को एक वक्त कच्ची और एक वक्त पक्की खिलाने का फैसला होता है , जिसके कारण साधू मेहतो को परबतिया की स्वर्गीया माँ फुलझड़िया का कण्ठा

बंधक रखना पड़ता है । शादी-ब्याह आदि प्रसंगों में भी ये लोग अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करते हैं, और फिर जिन्दगी भर गरीबी के कोल्हू के बैल बने रहते हैं ।

संक्षेप में इन गरीब जातियों का शोषण सभी ओर से होता है । अशिक्षा और अज्ञान के कारण इनका दोहन निरंतर होता ही रहता है । स्वतंत्रता के पश्चात् जो राजनीतिक गठबंधन हुए, उसमें भी यह शोषण-लीला जारी रही, क्योंकि आज़ादी-पूर्व के सारे गुरु-घण्टाल अब मुखौटे बदलकर देशभक्त हो गए । जमींदारी-उन्मूलन का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा । राजनीतिक दृष्टि से सब लोगों ने अपनी जमीनों को किसी-न-किसी प्रकार बचा लिया । हाँ, कुछ मुसलमान जमींदारों की जमीनें अवश्य चली गईं । रज़ा के उपन्यास "आधा गांव" में हम इस तथ्य को लक्षित कर सकते हैं ।

अतः सच पूछा जाय तो गांवों की असली समस्या यह गरीबी ही है । तभी तो "मैला आंचल" का डा० प्रशांत कहता है — " एनोफिलिज और ~~सैण्डफ्लाई~~ सैण्डफ्लाई से भी ज्यादा जहरीले और भयंकर कीटाणु हैं गरीबी और जहालत जो घुन की तरह उनके जीवन को लगी हुई है । " [23] "चौथी मुट्ठी" उपन्यास की मोती मा मस्तानी जीवन के प्रथम दौर में ही विधवा हो जाती है, फलतः एक दिन शहरी फोटोग्राफर बाबू के साथ भाग जाती है, जहां से उसके जीवन की त्रासद स्थितियों का प्रारंभ होता है । यहां ऊपरी तौर से तो यह सामाजिक समस्या प्रतीत होती है, परन्तु उसका उत्स ग्रामीण-जीवन में प्रवर्तित दारुण दरिद्रता में देखा जा सकता है । वस्तुतः गरीबी के कारण उसके मांबाप उसका विवाह एक वृद्ध से करवाते हैं, जो विवाह के चौथे दिन ही प्रभु को प्यारा हो जाता है । पहाड़ों तथा ग्रामीण इलाकों में यह कन्या-विक्रय आज भी देखा जा सकता है । मध्यप्रदेश तथा खानदेश में आज भी कुछ ऐसे मांबाप मिलते हैं जो कुछ रुपयों में अपनी बेटियों को किसी को भी देकर उन्हें उनके अपने हालात और भाग्य पर छोड़ देते हैं ।

जमींदारी-प्रथा : जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ । बड़े-बड़े और राजनीतिक पहुंच-वाले जमींदारों ने अपनी जमीनें बचा लीं । "आधा गांव " के हम्माद मियां,

अलग अलग वैतरणी " , " जल टूटता हुआ " तथा " सूखता हुआ तालाब" के जमींदार इसके उदाहरण हैं । रेणु की एक कहानी "लाल पान की बेगम" में जमींदार लोग अपनी-अपनी जमीनें किस प्रकार बचा लेते हैं , उसका भलीभांति चित्रण किया है । समूचे गांव में केवल एक ही व्यक्ति को दो-चार बीघा जमीन हासिल हो जाती है , जिसे पड़ा लेने के लिए भी शाम-दाम-दण्ड-भेद सभी को अख्तियार किया जाता है , यहां तक कि लोगों की भावनाओं तक को भुनाने का प्रयत्न किया जाता है । डा० कुंवरपालसिंह के शब्दों में " आजादी के बाद गांवों की स्थिति बहुत विचित्र हो गई । जमींदारी टूटने के बाद जैसी कि आशा की जाती थी , किसानों की , विशेषकर छोटे किसानों और खेतिहर मजदूरों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया । जमींदारों ने अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा दी गई सुविधाओं का फायदा उठाया और उनके पास उतनी ही शक्ति आ गई जितनी पहले थी ।"[24] "अलग अलग वैतरणी" के जैपालसिंह तथा बुझारथसिंह ; "जल टूटता हुआ " के दीनदयाल तथा महिपालसिंह ; "राग दरबारी" के वैद्यजी ; "आधा गांव" के हम्मादमियां आदि ऐसे जमींदारों के अच्छे उदाहरण हैं * , जो ग्राम-पंचायतों सरकारी संस्थाओं तथा अन्य सरकारी स्रोतों से पैसा लेकर उनका दुरूपयोग करते हैं । "राग दरबारी" के कालिकाप्रसाद तो इस कार्य के विशेषज्ञ माने जाते हैं — " कालिकाप्रसाद का पेशा सरकारी ग्राण्ट और कर्ज खाना था । वे सरकारी पैसे के द्वारा, सरकारी पैसे के लिए जीते थे । इस पेशे में उनके तीन सहायक थे — क्षेत्रीय एम०एल०ए० , खद्दर की पोशाक और उनका यह वाक्य -` अभी तो वसूली की बात ही न कीजिए । आपको कारवाई रोकने में दिक्कत न हो , इसलिए मैंने ऊपर भी दरख्वास्त लगा दी है ।` ... अपने हिसाब से वे गांव के सबसे ज्यादा आधुनिक आदमी थे , क्योंकि उनका यह पेशा बिलकुल ही आधुनिक काल की उपज था । .... वे हर स्कीम के भीतर तकावी की दरख्वास्त देते , हरएक हाकिम उनकी दरख्वास्तों की सिफारिश करता , हर बार उन्हें तकावी मिल जाती और हर बार वसूली के वक्त कारवाई रूकने की कारवाई हो जाती । .... उनका ज्ञान विशद था । ग्राण्ट या कर्ज देने वाली किसी नयी स्कीम के ब बारे में योजना-आयोग के सोचने भर की देर थी , वे उसके बारे में सबकुछ जान लेते थे । "[25] तात्पर्य यह कि सरकार की सभी कल्याण-योजनाओं का लाभ ये

ही लोग उठा ले जाते हैं ।

जमींदारी व्यवस्था टूट जाने के पश्चात् भी भूमि का समीचीन बंटवारा न होने से जमीन पर उन्हीं लोगों का हक रहा जिनका पहले था । 1960 के आसपास हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार गांव के 36 प्रतिशत घरानों में ही गांव की अच्छी खेती-लायक जमीन आबंटित थी ।[26] इन सब परिस्थितियों में कृषि उद्योग होती चली गयी , जिसका लाभ बड़े किसानों [कुलकों] को मिला । फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास "परती :परिकथा " में जित्तन बाबू का ट्रेक्टर इसी परिवर्तन को रेखांकित करता है । तथाकथित हरित एवं श्वेत क्रान्ति से बड़े किसानों और भूस्वामियों को ही लाभ हुआ है । "मैला आंचल " के तह-सीलदार साहब के पास गांव की लगभग 80 प्रतिशत जमीन है ।

<u>कृषि का औद्योगीकरण</u> :- कृषि के औद्योगीकरण के फलस्वरूप आयातित हरित-क्रान्ति के कारण गांवों में एक नये प्रभु-वर्ग की स्थापना हुई है । इस नव-धनिक वर्ग के पास शिक्षा व संस्कार जैसी कोई चीज नहीं है । अतः उनके सुपुत्रों को खुले सांड की तरह आज़ादी मिली हुई है । इस नव-धनिक प्रभु-सत्ता वर्ग की गुण्डागर्दी व दादा-गिरी को "जल टूटता हुआ " , " अलग अलग वैतरणी " , " आधा गांव" , " राग दरबारी" , " उभरते प्रश्न" [अश्विनीकुमार], "घानी" [सी.टी. खानोलकर], " सबसे बड़ा छल " [मधुकरसिंह] प्रभृति उपन्यासों में देख सकते हैं ।

"जल टूटता हुआ " के अमलेशजी संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ ऐसे एक पुराने जमींदार थे ; परन्तु उनकी संस्कारिता , सरलता तथा संवेदनशीलता से लाभ उठाकर दीनदयाल जैसे लोग उनकी जमीन को हड़प लेते हैं । दीनदयाल के कारण ही गांव में आयेदिन झगड़े-फसाद , खून-खराबा , फौजदारियां तथा कचहरी-अदालत चलते रहते हैं । "सब से बड़ा छल " का नारण भारती का लड़का जैसे-तैसे मिडिल करके कालेज में प्रवेश पाता है , तब कालेज यूनियन के चुनाव के समय वह अपने मित्रों को शराब की पार्टी देता है और बाप अपने बेटे के इन कारनामों पर फूला नहीं समाता । पुलिस से सांठ-गांठ करके यह वर्ग ऊपर आया है , अतः शिक्षा-संस्कार आदि में उनकी बिलकुल अभिरुचि नहीं

है । "राग दरबारी " के वैद्यजी भी इस नये वर्ग के प्रतिनिधि हैं । उनके पुत्र रूप्पनबाबू गले में रेशमी रूमाल डाले छैला बने घूमते रहते हैं । लेखक ने रूप्पनबाबू का बड़ा ही व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रण किया है — " रूप्पनबाबू स्थानीय नेता थे । उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि इण्डिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल सफेद करने पड़ते हैं । उनके नेता होने का सबसे बड़ा आधार यह था कि वे सबको एक निगाह से देखते थे । थाने में दारोगा और हवालात में बैठा हुआ चोर – दोनों उनकी निगाह में एक थे । उसी तरह इम्तहान में नकल करने वाला विद्यार्थी और कालेज में प्रिंसिपल उनकी निगाह में एक थे । वे सबको दयनीय समझते थे , सबका काम करते थे , सबसे काम लेते थे । उनकी इतनी इज्जत थी कि पूंजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुंचाकर किराया नहीं , आशीर्वाद मांगते थे । उनकी नेतागिरी का प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहां का कालेज था , बहां जहां उनका इशारा पाकर सैंकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे ।"[27]

वैद्यजी गांव के सर्वेसर्वा थे । वे कोऑपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डायरेक्टर और छंगामल इण्टरमीजिएट कालेज के मैनेजर हैं । तबके के हाकिम-हुक्काम तथा शिक्षा-अधिकारियों को उन्होंने अपने बश में कर रखा है । जो अधिकारी उनकी बात नहीं मानता उसका तबादला हो जाता है । जो सनीचर उनके दरबार में हमेशा भांग घोंटता रहता है , उसे वे ग्रामसभा के सरपंच के रूप में चुनाव जीता देते हैं । हमारे यहां लोकतंत्र तथा लोकतांत्रिक प्रणालियों का इन नेताओं के द्वारा क्या हश्र हुआ है , इसका एक व्यंग्यात्मक चित्र इसी उपन्यास में मिलता है । वैद्यजी को सपने में प्रजातंत्र दिखता है — " प्रजातंत्र उनके तख्त के पास जमीन पर पंजों के बल बैठा है । उसने हाथ जोड़ रखे हैं । उसकी शक्ल हलवाहों जैसी है और अंग्रेजी तो अंग्रेजी , वह शुद्ध हिन्दी भी नहीं बोल पा रहा है । फिर भी वह गिड़गिड़ा रहा है और वैद्यजी उसका गिड़गिड़ाना सुन रहे हैं । वैद्यजी उसे बारबार तख्त पर बैठने के लिए कहते हैं और समझाते हैं कि तुम गरीब हो तो क्या हुआ , हो तो हमारे रिश्तेदार ही , पर प्रजातंत्र उन्हें बारबार हुजूर और सरकार कहकर पुकारता है । ..... वह वैद्यजी से प्रार्थना करता है कि मेरे कबड्डे कपड़े फट गए हैं , मैं नंगा हो रहा हूं । इस

हालत में मुझे किसी के सामने निकलते हुए शर्म लगती है, इसलिए, हे वैद महराज, मुझे एक साफ-सुथरी धोती पहनने को दे दो। .... मैं आपके कालेज का प्रजातंत्र हूं और आपने यहां की सालाना बैठक बरसों से नहीं बुलायी है। मैनेजर का चुनाव कालेज खुलने के दिन से आज तक नहीं हुआ है। इन दिनों कालेज में हर चीज फल-फूल रही है, पर सिर्फ मैं ही एक कोने में पड़ा हूं। एक बार कायदे से आप चुनाव करा दें। उससे मेरे जिस्म पर एक नया कपड़ा आ जाएगा। मेरी शर्म ढक जाएगी।" [28]

तात्पर्य यह कि कृषि के इस औद्योगीकरण ने वैद्यजी जैसे घाघ नेताओं को जन्म दिया है, जो शील, संस्कार, सुरुचि जैसी तमाम अच्छी चीजों को घोलकर पी गए हैं, और जिनके रहते ग्रामीण-समाज के पिछड़े-वर्ग का आर्थिक-स्तर कभी ऊंचा नहीं आ सकता, क्योंकि सरकार की तमाम कल्याण-योजनाओं को ये लील जाते हैं। इस कृषि के औद्योगीकरण से वैद्यजी, जैपालसिंह, महिपसिंह जैसे बड़े किसानों को ही फायदा पहुंच रहा है और छोटे किसान--सीमान्त किसान, खेतिहर मजदूर, बंधुआ मजदूर आदि तो इनके शोषण की चक्की में दिन-रात पिस रहे हैं। वैद्यजी के समीप लोकतंत्र का जो हाल है, वही हाल देश के असली व सच्चे किसानों का है।

<u>चकबन्दी</u> :- सरकार की बहुत-सी योजनाओं का मूल उद्देश्य अच्छा होता है, परन्तु गांव के प्रभु-सत्ता वर्ग के लोग सरकारी अधिकारियों से सांठ-गांठ करके उसका अमलीकरण इस प्रकार कराते हैं कि उसमें उसी मूल उद्देश्य का ही छेद उड़ जाता है। चकबन्दी भी ऐसी ही एक योजना है, जिसमें किसी एक किसान की इधर-उधर बिखरी हुई जमीन को अदला-बदली करके एकमुश्त करने का उपक्रम रहता है, परन्तु इसका लाभ लेकर बड़े किसान अधिकारियों की मुट्ठी गर्म करके गरीब किसानों की अच्छी जमीनों को अपने हक में करा लेने की गंदी चालें चलते रहते हैं। "जल टूटता हुआ" के दीनदयाल रामकुमार के एक अच्छे फलद्रुप खेत को अपने चक में डलवा देते हैं, और रामकुमार बिचारा विरोध करता हुआ ही रह जाता है। गांव में एक दलसिंगार मउगा है। दौलतराय तथा कुछ अन्य लोगों से मिलकर वह भी अपने चक में कुछ अच्छी जमीनें जुड़वा लेता है, तब रामकुमार उसका विरोध करता है

और उस चक को तुड़वाने में सफल हो जाता है, क्योंकि दलसिंगार दौलतराय या दीनदयाल जितना समर्थ नहीं है । इसके प्रतिशोध में ~~रूपकुमार~~ दलसिंगार रामकुमार के बैल चुरवा लेता है ।[29] इससे स्पष्ट होता है कि गांव में जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टया अधिक समर्थ होता है वह दूसरों के हकों को हड़पने में सफल रहता है । गांव के अन्य लोग भी किसी-न-किसी प्रकार से उससे दबे हुए होते हैं , अतः न्याय का पक्ष लेने की अपेक्षा वे ऐसे ही लोगों का साथ देते हैं । अभी हाल ही में जो इराक-अमरिका युद्ध हुआ , उसमें एक गुट-निरपेक्ष राष्ट्र की हैसियत से हमें युद्ध-निरपेक्ष नीति अपनानी चाहिए थी , परन्तु हमारे स्वनाम-धन्य प्रधानमंत्री महोदय ने (चन्द्रशेखरजी ने) अमरीकी विमानों को इंधन देकर उस नीति का सरेआम भंग किया , क्योंकि भारत की आर्थिक दृष्टि से हिलती-डूबती नैया को बचाने के लिए आंतरराष्ट्रीय धन-निधि से (International Money Fund- IMF) सहायता चाहिए और इस IMF पर अमरीका का प्रभुत्व है । गांधीजी की यह बात बिलकुल सही है कि आर्थिक निर्भरता के बिना कोई भी देश सचमुच की स्वाधीनता नहीं प्राप्त कर सकता । बाबा तुलसी ने इसलिए लिखा है -- " जा दिन कर तर कर करो , ता दिन मरण करो ।" जो बात देश पर लागू होती है , वह किसी गांव या व्यक्ति पर भी लागू हो सकती है ।

महाजनों द्वारा शोषण :-ऋण की समस्या , गांव के लोगों की एक मूल समस्या है । गांव के गरीब लोग खेतिहर मजदूर, तथा सीमान्त किसान हमेशा ऋण से लदे रहते हैं । एक बार महाजन के यहां गये , तो जिन्दगीभर के लिए बंध गए । सूद-दर-सूद का गोरखधंधा चलता ही रहता है । "गोदान" की मूल समस्या भी ऋण की समस्या ही दिखती है । इसमें एक और परिमाण अब जुड़ा है । बड़े जमींदार भी अब महाजनी करने लगे हैं । "मैला आंचल" के तहसीलदार साहब तो जो भी कर्ज लेने जाता है , उससे कोरे कागज पर दस्तखत या अंगूठा करवा लेते हैं । गांव की लगभग 80 प्रतिशत जमीन उनके यहां रेहन पड़ी है ।

गांव के गरीब तबके के लोगों में अर्थ-कुण्ठा पायी जाती है । इसी अर्थ-कुण्ठा के कारण जब उनके पास कुछ पैसे आ जाते हैं , तब वे अनाप-सनाप खर्च कर देते हैं , और फिर उसी महाजन का मुंह देखने लगते हैं । शादी ब्याह में भी वे अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करते हैं , और फिर कर्ज के नीचे

दब जाते हैं । कर्ज देने वाले भी उन्हें उस समय ज्यादा कर्ज लेने के लिए उकसाते हैं । " धरती धन न अपना " का छज्जू शाह एक कर्ज लेने आए चौधरी से कहता है — " हां , हां क्यों नहीं ? अगर सरदार और चौधरी लोग खर्च नहीं करेंगे तो क्या कुम्हार और चमार करेंगे ? "[30]

अशिक्षा एवं पुराने संस्कारों के कारण भी कई बार गांव के लोग ऋण के शिकार होकर गरीबी में धंसते चले जाते हैं । किसी सामाजिक खर्च या आर्थिक संकट के समय जमीन या गेहनों के एक छोटे-से हिस्से को यदि एक मुश्त निकाल ही दें तो शायद उन्हें पैसे भी ज्यादा मिलें और ऋण की समस्या से भी बच जाय । पर जमीन या गहना बेचना वे उचित नहीं समझते । उसे रहन रखते हैं , जिसे वे कभी नहीं छुड़ा पाते , और धीरे-धीरे उनकी सारी जमीन गहने उनके पास चले जाते हैं । "जल टूटता हुआ " के दीनदयाल तथा दौलतराय इसी प्रकार मालेगुजार होते गए हैं । "नदी फिर बह चली " का जनार्दन भी जमींदारी के साथ यही व्यवसाय करता है । "जल टूटता हुआ " के अमलेशजी की लगभग सारी जमीन दीनदयालजी हड़प जाते हैं , और उनके लड़के सतीश को महिपसिंह के यहां मुंशीगिरी करनी पड़ती है । "बलचनमा " के फूलबाबू , "मैला आंचल " के तहसीलदार साहब , "परती: परिकथा " के जमींदार साहब , "सती मैया का चौरा " का जमींदार सुगंधराय , "अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह , "राग दरबारी " के वैद्यजी और गयादीन , " धरती धन न अपना " के छज्जू शाह , "जल टूटता हुआ " के दीनदयाल , महिपालसिंह तथा दौलतराय ; " कभी न छोड़े खेत " के फेरूमल आदि इस महाजनी पूंजीवादी व्यवस्था के ठेकेदार हैं ।

" कभी न छोड़े खेत " उपन्यास में किसानों से चिकनी-चुपड़ी बातें करके , उनसे रूक्का लिखवाकर , खेत अपने नाम पर करवा लेने की जालसाजी का यथार्थ चित्रण लेखक ने प्रस्तुत किया है । किसानों को कर्ज देते समय ये महाजन बड़ी चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं । अपने वाग्जाल में फंसाकर , फिर जीवन भर लूट-खसोट करते रहते हैं । उनकी ऊंची ब्याज की दर के कारण किसान ऋण से मुक्त नहीं हो पाता । इस उपन्यास का फेरूमल वंचितसिंह से कहता है — " पांच सौ कल रात लिए थे , बारह सौ थैली में है । पहली शशमाही का सूद तीन सौ रूपया काट लिया है । "[31] इस प्रकार वंचितसिंह और नत्थासिंह दोनों की जोतें फेरूमल और मुंशी संभाल रहे हैं । एक स्थान पर लेखक किसानों को संबोधित करते हुए

कहता है — " मूर्खों .... ओ मूर्खों ... जाट सिर्फ हाट [दुकानदार] से मार खाता है । "[32]

ऊपर निर्दिष्ट किया जा चुका है कि अब कुछ बड़े जमींदार भी, जमींदारी के साथ-साथ, महाजनी भी करने लगे हैं । परन्तु एक तीसरा आयाम भी इधर प्रस्फुटित हो रहा है — वह है धार्मिक मठाधीशों का । " कभी न छोड़े खेत " में डेरे का महन्त शामसिंह डेरे के नाम पर लोगों को बहकाकर गांव में सबसे ज्यादा भूमि कर लेता है । धार्मिक पाखंड फैलाकर ये मठाधीश बेचारे गरीब किसानों की भू-संपत्ति हड़प लेते हैं और फिर उसकी आय पर वे तथा उनके चेले ऐयाशी करते हैं । मक्खन में बादाम और शहद मिलाकर चाटते हैं । उपन्यास में बताया है कि एक स्त्री डेरे के महंत की बादाम रोगन से मालिश करती है और अन्य दो स्त्रियां उसकी पिंडलियां दबाती हैं ।[33]

नागार्जुन के उपन्यास "इमरतिया" में जमनिया मठ का बाबा गांव के जमींदारों तथा महाजनों के संरक्षण में गांव के भोले भाले लोगों को लूटने का काम करता है, परन्तु उसमें सिंहभाग भगौतीप्रसाद तथा बिर्धीचन्द जैसे लोग ले जाते हैं । उस संबंध में बाबा एक स्थान पर कहता है — " हिन्दू जाति सचमुच गाय होती है । बार-बार दुहते जाओ, बूंद-बूंद निचोड़ लो । फिर भी लात नहीं मारेगी, सिंग नहीं चलाएगी । अपनी भोलीभाली जनता को दुहने के लिए भगौती ने हमसे बछड़े का काम लिया । "[34]

महाजनों के द्वारा गांव के निम्न व मध्यवर्ग के शोषण का एक और पहलू महाजन तथा पुलिस की सांठ-गांठ है, जिसके फलस्वरूप वे लोग गांव के कुछ लोगों को मार-पीट, खून-खराबा आदि के लिए निरंतर उकसाते रहते हैं । वे सब यह कर तो लेते हैं, परन्तु फिर पुलिस व कानून से बचने के लिए रिश्वत का सहारा लेते हैं, और इसी रिश्वत के लिए महाजनों के द्वार खटखटाए जाते हैं । कहा गया है कि गरजवान को अक्कल नहीं होती, अतः इन स्थितियों में पूरी तरह से उन्हें चूस लिया जाता है । गांव में यदि फौजदारियां न हों तो महाजनों का काम कैसे चलेगा । " कभी न छोड़े खेत " में पुश्त-दर-पुश्त चलने वाली दुश्मनी और उसमें महाजनों की हो रही चांदी को लेखक ने भलीभांति उजागर किया है । इसमें नम्बरदारों तथा नीलोंवालियों के बीच चल रही पुश्तैनी दुश्मनी को कथावृत

का केन्द्र बनाया गया है । चार-छः उपलों के बिगड़ जाने पर करतारा को जान से मार दिया जाता है , और उसी में जो खून-खराबा तथा कोर्ट-कचहरियां होती हैं , उनमें दोनों पक्षों के लोगों की आर्थिक दृष्टि से धुलाई होती है । ऐसी दुश्मनी केवल नीलोवालियों तथा नम्बरदारों में ही नहीं , अपितु हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रत्येक गांव में जाटों , नम्बरदारों , गुजरों , यादवों , ठाकुरों इत्यादि में पायी जाती है । ये किसान लोग बहुत मामूली बातों पर खून-खराबे पर उतर आते हैं । जरा-सी फसल अच्छी होने पर उनके भीतर का पशु रस्सेको तोड़का बाहर आता है । परन्तु ऐसा वह अधिक समय नहीं कर पाता , क्योंकि कानून के मोटे रस्से से उसे जकड़ लिया जाता है । ये किसान अपने यहां तो बहुत बहादुरी दिखाते हैं , पर थाने में , सरकारी दफ्तरों में , न्यायालयों तथा हाकिम-हुक्कामों की उपस्थिति में भीगी बिल्ली बन जाते हैं । अपने गांव में किसी की एक कड़ी बात न सुनने वाले ये लोग पुलिस तथा अधिकारियों की फटकारें तथा गालियां सुनते रहते हैं और उनके कृपाकांक्षी होने के लिए अनाप-शनाप खर्च करते रहते हैं । इस प्रकार गांव के महाजनों तथा जमींदारों को दोहरा लाभ होता है । एक तो उन्हें चूसने का सुनहरी मौका उन्हें मिल जाता है , और दूसरे जो शक्ति उनके खिलाफ खड़ी हो सकती है , वह इस प्रकार के आपसी-टकराव में बिखर जाती है ।

औद्योगीकरण :- औद्योगीकरण ने शहरों को तो प्रभावित किया ही है , परंतु गांव भी कमोबेश रूप में उससे प्रभावित हुए हैं । गांवों में पहले कुछ परिवार तो अपनी कला-कारीगरी तथा जातिगत पारंपरिक व्यवसायों के कारण पल जाते थे , परन्तु औद्योगीकरण ने उन्हें खेतिहर मजदूर या शहरी मजदूर बनने पर विवश कर दिया है । चमार , तेली , बुनकर प्रभृति को इसमें गिना सकते हैं । " लोहे के पंख " (हिमांशु श्रीवास्तव) का मंगरूवा चमार शहर में जाकर मजदूर बन जाता है । उसी प्रकार "जल टूटता हुआ " के जसपतिया चमार का लड़का रमपतिया शहर में जाकर नौकरी करने लगता है । " वरुण के बेटे " (नागार्जुन) के मछुए कोसी-योजना में काम करने के लिए चले जाते हैं और इस प्रकार ग्रामीण मछुए शहरी मजदूर बन जाते हैं । इससे एक तरफ जहां ग्रामीण निम्नजातीय लोगों पर की पकड़ थोड़ी ढीली हुई

है , वहां दूसरी तरफ खेतिहर मजदूरों की कमी के कारण काश्तकारी महंगी होती जा रही है । जिसके परिणाम स्वरूप उत्पादन-शुल्क में वृद्धि के कारण अनाज-पानी की महंगाई बढ़ रही है ।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण को जन्म दिया । पहले ग्रामीण कुटीर-व्यवसाय में एक ही परिवार के व्यक्ति मिलकर संपूर्ण निर्माण-प्रक्रिया को पूरा करते थे । अतः उसमें एक सृजन का आनंद भी रहता था , जिसे हम " जोब सतिस्फेक्शन " कह सकते हैं । किन्तु वर्तमान मशीन-प्रणाली ने इस समूची उत्पादन-प्रक्रिया को अनेक छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर दिया है । केवल एक आल्पीन जैसी सामान्य वस्तु के निर्माण में लगभग अस्सी से अधिक छोटी-छोटी प्रक्रियाएं होती हैं । इसमें एक व्यक्ति इस समूची प्रक्रिया के एक छोटे-से कार्य में ही विशेषज्ञ हो जाता है । उसे दूसरा काम नहीं आता । उदाहरणार्थ , वस्त्र-निर्माण के उद्योग में कुछ व्यक्ति धागा बनाने के तो कुछ वस्त्र बुनने में तो कुछ उन्हें रंगने के कार्य में विशेषज्ञ हो जाते हैं । अतः निर्माणजन्य आनंद के स्थान पर मनुष्य की चेतना पर मशीनों ने कब्जा ले लिया । यंत्र के साथ वह भी यंत्र हो गया । कुटीर-व्यवसायों में व्यक्ति को काम करने के बाद जो मानसिक आनंद मिलता था , वह कारखानों में समाप्त हो गया । क्योंकि अब वह संपूर्ण निर्माण की अपेक्षा , उसकी एक छोटी-सी प्रक्रिया में ही हिस्सा लेता था । इस प्रकार औद्योगीकरण से ग्रामीणता एवं गृह-कला का ह्रास हुआ ।

बेकारी की समस्या : पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि औद्योगीकरण के फलस्वरूप कुटीर-उद्योगों को क्षति पहुंची है और इन उद्योगों पर पलने वाले परिवारों को बेकारी की चपेट ने ले लिया है । दूसरी तरफ कृषि के औद्योगीकरण से भी ग्रामीण बेकारी में अभिवृद्धि हुई है । शहरों में जहां शिक्षित बेकारी की समस्या है , वहां गांवों में अशिक्षित या अर्धशिक्षित बेकारों की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ रही है । जंगलों एवं वनों के विनाश ने भी इसमें अभिवृद्धि की है । केवल हमारे ही गांव में जंगल के विनाश के कारण पचास-साठ लोगों की रोजी-रोटी छिन ली गई है । इन जंगलों के विनाश से पर्यावरण से संबंधित प्रश्न तो पैदा होते ही हैं , गांवों के अर्थकारण पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है । एक जंगल कितने ही गरीब परिवारों को पोषता है । जंगल की भांति गांव के पोखर तथा गौचर भी अदृश्य हो रहे हैं । फलतः उन पर पलने

वाले लोग भी बेकारी का शिकार हो रहे हैं ।

" मैला आंचल " के बावनदास की भांति "वरुण के बेटे " के मोहन मांझी ने भी आज़ादी का एक सपना देखा था । " गढ़-पोखर का जीर्णोद्धार होगा आगे चलकर और तब मलाही-गोढ़ियारी के ग्रामांचल मछली-पालन व्यवसाय का आधुनिकतम केन्द्र हो जायेंगे । वैज्ञानिक प्रणाली से यहां मछलियां पाली जायेंगी । पूस से लेकर जेठ तक प्रतिवर्ष अच्छी से अच्छी मछलियां आधे से अधिक परिमाण में हम निकाल सकेंगे । एक-एक सीज़न में पचास-पचास हजार रूपयों की आय होगी । मलाही-गोढ़ियारी का एक-एक परिवार गढ़-पोखर की बदौलत सुखी-संपन्न हो जायेगा । विशाल जलाशय की इन कछारों में हम किस्म किस्म के कमलों और कुमुदिनियों की खेती करेंगे । पक्की ऊंची भिंडों पर इकतल्ला सैनिटोरियम बनेगा , फिर दूर-पास के विद्यार्थी यहां आकर छुट्टियां मनाया करेंगे । " 35 लेकिन ये सपने साकार नहीं होते , क्योंकि संपूर्ण भू-संपत्ति के मालिक होने के उपरान्त अब इनकी नीयत इतनी तीन कौड़ी की हो गई है कि इन गढ़-पोखरों की दलाली से भी वे अपना मुंह काला कर रहे हैं । धीरे-धीरे जमींदार लोगों ने पोखरों और चरागाहों को भी बेचना शुरू कर दिया है , तभी तो भोला खुरखुन , बिसुनी , रंगलाल , नथुनी , चिन्तन आदि सोचते हैं — " छोड़ा नहीं जाय , गढ़-पोखर पर हमेशा अपना अधिकार रहा है । जमींदार जल-कर लेता था , हम देते थे । नया खरीदार दूसरे-तीसरे गांव के मछुओं को मछलियां निकालने का ठेका देता चलेगा और हम पुश्तैनी अधिकारों से वंचित होकर घूमते फिरेंगे । भला यह भी क्या मानने की बात है । " 36

वर्तमान शिक्षा-नीति के परिणामस्वरूप एक तरफ तो गांवों में अर्धशिक्षित , अधकचरी पीढ़ी तैयार हो रही है , जो न पूरी तरह से पुरानी व्यवस्था में खप रही है , न नयी व्यवस्था में काम कर रही है ; और दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग तैयार हो रहे हैं , जो गांवों में चाहते हुए भी रह नहीं सकते । "अलग अलग वैतरणी " तथा " जल टूटता हुआ " में इसके तप्त दंश को बताया गया है । जो अर्धशिक्षित,अधकचरी पीढ़ी तैयार हो रही है , वह आवारा-गर्दी , जुआ तथा लौंडियाबाजी में आकण्ठ डूबी है । न इसके पास नौकरी है , न दूसरे काम की योग्यता । श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "राग दरबारी" में इस प्रकार के लोगों का बड़ा ही सटीक दिग्दर्शन मिलता है । यथा - " सामने

रास्ते से तीन नौजवान जोर जोर से ठहाके लगाते हुए निकले । उनकी बातचीत किसी ऐसी घटना के बारे में होती रही जिस में दोपहर, फ्टूश, चकाचक, ताश और पैसे का जिक्र उसी बहुतायत से हुआ जो प्लानिंग कमीशन के अहलकारों में 'इवैल्युएशन', 'कोआर्डिनेशन', 'डवटैलिंग', या साहित्यकारों में 'परिप्रेक्ष्य', 'आयाम', 'युगबोध', 'संदर्भ' आदि कहने में पायी जाती है । कुछ कहते-कहते तीनों नौजवान बैठक से आगे बढ़कर जाकर खड़े हो गए । सनीचर ने कहा — बद्री भैया इन जानवरों को कुश्ती लड़ना सिखाते हैं । समझ लो बाघ के हाथ में बन्दूक दे रहे हैं । वैसे ही सालों के मारे लोगों का रास्ता चलना मुश्किल है, दांव-पेच सीख गये तो गांव छोड़ देना होगा । "[37]

इसी उपन्यास में ही बताया है कि शिवपालगंज में दोपहर के समय लौंडे अमराई में जुआ खेलते हैं । उनकी बातचीत से उनकी मानसिकता का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है — " यही तुम्हारी इंसानियत है ? जीतते ही सू तुम्हारा पेशाब उतर आता है । टरकने का बहाना ढूंढने लगते हो ।.... कभी कभी जीतने वाला भी इंसानियत का प्रयोग करता था । वह कहता, 'क्या इसी का नाम इंसानियत है ? एक दाव हारने में ही पिलपिला गये । यहाँ चार दिन बाद हमारा एक दांव लगा तो उसी में हमारा पेशाब बंद कर दोगे ? "[38]

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण-परिवेश के उपन्यासों के अध्ययन से एक तथ्य जो और सामने आया है, वह यह है कि यहाँ भी अच्छी नौकरियाँ केवल उन्हीं को मिली हैं, जो अन्यथा भी, आर्थिक दृष्टया जमीन-जायदाद के मामले में संपन्न हैं । "राग दरबारी" के मास्टर मोतीलाल, "जल टूटता हुआ" के जग्गनमिसिर और रामकुमार, "सूखता हुआ तालाब" के मास्टर हरेन्द्र आदि इसके उदाहरण हैं । मास्टर मोतीलाल का तो सारा ध्यान ही अपने खेतों और आटाचक्की में फंसा रहता है । वे आपात-घनत्व का सिद्धांत भी आटाचक्की के माध्यम से सिखाते हैं । यथा — " आपेक्षिक माने किसी के मुकाबले का । मान लो तुमने एक आटाचक्की खोल रखी है । तुम महीने में उससे पांच सौ रुपये पैदा करते हो, और तुम्हारा पड़ोसी चार सौ । तो तुम्हें उसके मुकाबले में ज्यादा फायदा हुआ । इसे सायंस की भाषा में कह सकते हैं कि तुम्हारा आपेक्षिक लाभ ज्यादा है । समझ गये ? "[39] जब ऐसे लोग "विज्ञान" या "गणित" पढ़ायेंगे तो

उनके छात्र 'चकाचक ', ' फंटूश ', ' साला ', ' धकापेल ' जैसे शब्दों का बहुतायत से प्रयोग न करें, तो ही आश्चर्य होगा ।

इस ग्रामीण बेकारी का एक नया आयाम यह दृष्टिगोचर हो रहा है कि नौकरी पाने के लिए केवल डिग्रियां नहीं, अपितु आर्थिक संपन्नता भी चाहिए । धन से ही धन कमाया जा सकता है । नौकरी को भी एक चीज़ की तरह खरीदा जाता है --

" सिर्फ डिग्री ही नहीं धूमधाम होना चाहिए
मंत्रियों के मंत्र का, इन्तज़ाम होना चाहिए
ज्ञान को है कौन पूछता, ज्ञान गलियों में बीके
काम पाने के लिए अब दाम होना चाहिए ।। " [40]

"राग दरबारी " के वैद्यजी जैसे लोग स्कूलों व कालिजों को इसलिए हथियाये बैठे हैं । वे अच्छी पढ़ाई और अच्छे शिक्षकों पर इसलिए भी जोर नहीं देते कि ये यदि पढ़-लिख गए तो उनके यहां हलिया कौन बनेगा ? उनके खेतों में मजदूरी कौन करेगा ? " उभरते प्रश्न " का रोशनलाल गांव के एक स्कूल मास्टर से बिलकुल सही कहता है -- " मास्टर इन्हें पढ़ाकर तुम उनका भी अहित ही कर रहे हो । ये न घर के रहेंगे, न घाट के । " [41]

" जल टूटता हुआ " के सतीश के सोच में भी इस तथ्य को रेखांकित किया गया है -- " मास्टर लोग ऐसे भरे गए हैं जैसे भेड़-बकरे हों । जिसे कहीं ठिकाना नहीं उसे यहां ठिकाना मिला हुआ है । कोई इस जवार के बड़े आदमी का भाई-भतीजा है, कोई किसी का संबंधी है, कोई किसी मेम्बर का कुछ लगता है और सभी लोग अपनी मर्जी से आते हैं, टांग पसार कर कुर्सी पर लेटते हैं । " [42]

ग्रामीण बेकारी शिक्षितों से ज्यादा अशिक्षितों की बेकारी है । यहां कुछ लोगों का तर्क यह है कि गांवों में अशिक्षित लोग प्रायः मेहनत-मजदूरी का काम करते हैं, अतः उन्हें बेकार कैसे कहा जा सकता है । परन्तु अर्द्ध-बेकारी (Under-Employment) को भी बेकारी ही कहा जायेगा । कीन्स के अनुसार जब कोई व्यक्ति प्रचलित मजदूरी दर से भी कम मजदूरी पर कार्य करने हेतु तैयार हो जाता है तो वह भी अर्द्ध-बेकारी की स्थिति है । "धरती धन न अपना ", "जल टूटता हुआ ", " अलग अलग वैतरणी ", " उभरते प्रश्न ", "महाभोज"

प्रभृति उपन्यासों में हम देखते हैं कि खेतों में काम करने वाले हलियों और मजदूरों की स्थिति अच्छी नहीं है, क्योंकि उन्हें अपनी मेहनत की मजदूरी बहुत कम मिलती है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि आज़ादी के बाद भी परिश्रम का मूल्य बढ़ा नहीं है। इन पंक्तियों का लेखक भी गांव में रहता है। मैंने अपने गांव में देखा है कि गांव के जमींदार लोग तीन-चार हजार के सालाना वेतन पर नौकर (हलिया) को रखते हैं, अर्थात् महीने के तीन सौ, साढ़े तीन सौ रूपये हुए जिसमें उन्हें सवेरे पांच बजे से लेकर रात के आठ-नौ बजे तक खटना पड़ता है। दस-पन्द्रह घण्टे की नौकरी और पगार ? यहां डा० शिवमंगलसिंह सुमन की पंक्तियां स्मृति में कौंध जाती है -- "क्या मिला मुझे मेरी मेहनत का सिला, चन्द सिक्के चांदी के हाथ के छालों की तरह।"[43] "महाभोज" उपन्यास के बिसू को इसलिए तो मार दिया जाता है कि वह ग्रामीण मजदूर तबके के लोगों की चेतना को जगाकर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट कर रहा था। बिहार के बेलछी तथा पारस-बिगहा में जो नृशंस अत्याचार हरिजनों तथा उनकी स्त्रियों पर हुए उसके पीछे भी यही कारण है। अभी हाल में ही बिहार के ही प्रतापगढ़ जिले में हरिजनों की सामूहिक हत्याएं हुईं, इसके पीछे भी इसी प्रकार की बातें कारणभूत हैं। नागार्जुन के उपन्यास "बलचनमा" के नायक बलचनमा को भी इसलिए मौत के घाट उतार दिया जाता है कि वह गरीब तबकों में चेतना जगा रहा था।

कई बार तो कड़ी मेहनत के बाद उन्हें मजदूरी तक नहीं मिलती। "वरुण के बेटे" का दुन्नी कहता है -- "मिट्टी काढ़ते-ढोते बारह दिन बीत गए छदाम का भी दरसन नहीं हुआ। उधार चावल, दाल, नमक, हल्दी, मिर्च, ईंधन देने वाला दुकानदार भला क्यों छोड़ने लगा ? कुदाल रख ली, टोकरा रख लिया, धोती तक उतरवा ली, कमर से गमछा लपेटे, दो दिन दो रात का भूखा मैं घर लौट आया हूं।"[44]

गांवों में भूमिहीन मजदूरों की स्थिति बड़ी विचित्र है। हर हाल में वह बिकता है, क्योंकि उसके पास जीवन धारण करने के लिए कोई साधन नहीं। वह बिकने को विवश है। उसके पास हाथ-पैरों, श्रम-शक्ति के अलावा कुछ भी नहीं है। पेट तो किसी को भी नहीं छोड़ता, अतः रोटी पाने के लिए वह श्रम बेचता है और उसके श्रम का एक तरफा मोल-भाव होता है, क्योंकि

शोषक संगठित है और शोषित गरीब-मजदूर वर्ग असमर्थ अतएव असंगठित है । वह बेकार है, इसलिए सस्ते दामों में अपना श्रम बेचता है । "सती मैया का चौरा" का मुन्नी इन शब्दों में अपनी व्यथा को व्यक्त करता है — " मुझे मालूम हुआ कि यह जंगल बहुत बड़ा है, यह अंधकार चारों तरफ फैला हुआ है और यहां लाखों-करोड़ों लोग मेरी ही तरह घिरे हुए हैं । "[45] यही कारण है कि "अलग अलग वैतरणी" में भूमिहीन किसानों और जमींदारों के संघर्ष को डा० शिवप्रसादसिंह ने महत्व दिया है । खेतिहर मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आती है और वे कहते हैं — " मार के जान ले लो । लेकिन हम एक बार नहीं सौ बार कह रहे हैं । हम बिना रोज़ाना बन्नी के काम नहीं करेंगे । परती खेत लेकर ओम्मां अपनी कब्बर बनाएंगे ? हमारे छोटे छोटे लड़िका चार दिन से भूखे सोय रहे हैं । इससे अइसा काम नहीं होगा । "[46]

गांवों में कुछ जमींदार लोग अपनी अनुपजाऊ ~~धरती~~====== परती उसर जमीन गरीब मजदूर किसानों को देकर उसके बदले में अपना काम कराते हैं । शोषण के उक्त कोण को उपर्युक्त कथन में बेपर्द किया गया है । वस्तुतः देखा जाय तो उनके इस प्रकार के शोषण के मूल में उनकी आर्थिक असमर्थता है । आर्थिक असमर्थता के कारण ही उनको अपना श्रम औने-पौने दामों में बेचना पड़ता है । दूसरा कोई चारा नहीं है । "धरती धन न अपना" के हरिजन चमारों का आंदोलन इसी-लिए तो कुछ ही दिनों में ठप पड़ जाता है । बाढ़ का पानी जब गांव में प्रवेश करने लगता है तब बांध को तोड़ दिया जाता है । मकाई के खतों को नुकसान होता है, पर गांव बच जाता है । बांध को जहां से तोड़ा गया था, वहां एक बहुत बड़ा छेद हो जाता है । उसे पूरने के लिए चमादड़ी के सभी चमारों को लगाया जाता है । प्रारंभ में मजदूरी की आशा में उन्हें प्रसन्नता होती है, परंतु दो-तीन दिन तक जब मजदूरी की कोई बात नहीं चलती तब भीतर-भीतर खुसर-पुसर शुरू हो जाती है, परंतु चौधरियों को कहने का साहस किसी को नहीं होता । आखिर काली, जीतू जैसे कुछ युवक जब काम बंद करते हैं तब दूसरों में चेतना का संचार होता है । पूरे गांव का काम था, अतः उन्हें काम की मज-दूरी मिलनी चाहिए । दूसरी तरफ चौधरी लोग यह कहते हैं कि बांध नहीं तोड़ा जाता तो उनके ही घर डूबते-गिरते, तो मजदूरी किस बात की ? जब कि वस्तुतः यथार्थ स्थिति यह थी कि बाढ़ के पानी के कारण जब बाबा फत्तू

का घर गिरने की स्थिति में था , तब तो चौधरी लोग मौन रहते हैं । परंतु अचानक एक वृक्ष के गिरने से पानी का बहाव गांव की ओर होने लगता है , तब लालू पहलवान के सुझाव पर बांध को तोड़ा जाता है । चमारों का कहना था कि बिना मजदूरी के वे कई-कई दिनों तक बेगार कैसे कर सकते हैं ? अतः वे काम बन्द करते हैं । इस पर गांव के चौधरी उनका सामाजिक बहिष्कार करते हैं । गांव की नाकाबन्दी होती है । कुदरती हाजत तक के लिए उन्हें खेतों में नहीं जाने दिया जाता । अतः शनैः शनैः उनके हौंसले पस्त होने लगते हैं । यह तो फसल का समय था , और चौधरियों का भी काफी नुकसान हो रहा था , खेती के सारे काम अटके हुए थे , अतः आंशिक रूप से चमारों की कुछ बात मान ली जाती है और दोनों में समझौता हो जाता है ।

अतः यह दृष्टिगत किया जा सकता है कि गांवों में जो अशिक्षित बेकारी है , वह छुपी हुई बेकारी (Disguised Unemployment) है । प्रत्यक्षतः दिखती नहीं , परन्तु सूक्ष्मता से देखा जाय तो पता चलता है । कई बार छोटे कृषकों के परिवार भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर पल रहे होते हैं । परिवार में सदस्य बढ़ते जाते हैं , जमीन तो उतनी ही रहती है , फलतः भूमि पर दबाव बढ़ता है । प्रकट रूप में ऐसा लगता है कि सभी रोजगार में लगे हुए हैं , किन्तु उनके द्वारा उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती । यदि इन में से कुछ को कृषि से हटाकर कहीं अन्यत्र लगाए जाएं तो भी कृषि-उत्पादन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा । इस प्रकार अप्रकट रूप से वे बेकार ही समझे जाएंगे ।

दूसरे गांवों की बेकारी मौसमी तथा आकस्मिक (Seasonal or Casual unemployment) किस्म की भी होती है । कृषि में फसल काटने के समय मजदूरों की आवश्यकता रहती है । जहां कृषि का आधार केवल वर्षा पर होता है , वहां यह समस्या और भी विकट होती है । वर्ष में कुछ महीने उन्हें बेकार ही रहना पड़ता है । कुछ लोग बेकारी के इन दिनों में जमींदारों या महाजनों से अग्रिम मजदूरी ले आते हैं , जो अनिवार्यतः उनकी गरज के कारण निश्चित दरों से कम होती है । जब फसल के दिनों में ऐसे लोग अधिक मजदूरी मिलने पर अन्यत्र चले जाते हैं , तो उसे लेकर कई बार उनकी मारपीट भी हो जाती है । "धरती धन न अपना " , "अलग अलग वैतरणी " , " जल टूटता हुआ " प्रभृति उपन्यासों

में ऐसी अनेक घटनाएं मिलती हैं ।

भारत में , विशेषतः गांवों में , गरीबी का एक कारण बढ़ती हुई जनसंख्या भी है । अशिक्षा , मनोरंजन के साधनों का अभाव , तंगदस्ती आदि कारणों से आनंद-प्राप्ति का एक-मात्र साधन जातीय-आकर्षण रह जाता है । फलस्वरूप जन-संख्या में निरंतर वृद्धि होती जाती है । सन् 1961 में भारत की जनसंख्या 43 करोड़ थी , जो 1981 में बढ़कर 68.87 करोड़ हो गई थी[47] और अब विगत 1991 की गणना के अनुसार वह लगभग 85 करोड़ हो गई है ।[48] जब तक इसमें कोई रोक-थाम न होगी , बेकारी तथा गरीबी की समस्या कभी हल नहीं हो सकती । गांवों में तो कुछ स्त्रियां ऐसी होती हैं जिनके आठ-आठ नौ-नौ बच्चे होते हैं । शैलेश मटियानी के उपन्यास "हौलदार" में थोकदार जमनसिंह की बड़ी बहू लछमा को आठ-नौ संतानें होती हैं ।[49]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सीमित भूमि , भूमि का दोषपूर्ण असमान वितरण , कुटीर उद्योगों के पतन , मौसमी कार्य , श्रम की मांग एवं पूर्ति में असंतुलन , संपन्न वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण , अशिक्षा , अंधविश्वास तथा रूढ़ियों के कारण ग्रामीण-जनता में बेकारी एवं निर्धनता पायी जाती है ।

आवास की समस्या : गांवों में आवास की समस्या का एक दूसरा ही रूप देखने को मिलता है । शहरों की भांति यहां मकानों की तंगदस्ती तो नहीं , परंतु मकानों में वे सब सुविधाएं नहीं होतीं जो शहरों में उपलब्ध होती है । ज्यादातर मकान कच्चे और घासफूस के होते हैं । बिजली नहीं होती । नल नहीं होता । सांप-बिच्छू का डर रहता है । "जल टूटता हुआ " तथा "सांप और सीढ़ी " में ऐसे दो-तीन प्रसंग आए हैं जहां लोगों की आकस्मिक मृत्यु सांप के काटने से होती है । अस्पताल , पक्के रास्ते , दूरभाष तथा मोटर कार जैसे वाहनों के अभाव में व्यक्ति बीच में ही दम तोड़ देता है । गांव के अधिकांश मकानों में , विशेषतः गरीब तबकों में , संडास की व्यवस्था नहीं होती है , अतः कुदरती हाजत के लिए उन्हें बाहर खेतों में या जंगल-झाड़ियों में जाना पड़ता है । अतः मुंह-अंधेरे या रात के समय इस काम को निबटाना होता है । स्त्रियों की समस्या दोहरी होती है । वे अकेली एकदम निर्जन स्थान पर भी नहीं जा सकती । अतः कई बार रास्ते के

किनारे बैठ जाती हैं और किसी राहदारी के आने पर उठ खड़ी होती हैं । श्रीलाल शुक्ल के "राग दरबारी " उपन्यास में इसका व्यंग्यात्मक या कहिए उपहासास्पद-सा चित्र इस प्रकार मिलता है — " थोड़ी देर में ही धुंधलके में सड़क की पटरी पर दोनों ओर कुछ गठरियाँ-सी रखी हुई नज़र आयीं । ये औरतें थीं , जो कतार बांधकर बैठी हुई थीं । वे इत्मीनान से बात करती हुई वायुसेवन कर रही थीं और लगे हाथ मल-मूत्र का विसर्जन भी । सड़क के नीचे घूरे पड़े थे और उनकी बदबू के बोझ से शाम की हवा किसी गर्भवती की तरह अलसायी हुई चल रही थी । " 50

" धरती धन न अपना " में इस समस्या का एक और पहलू उपलब्ध होता है । गांव के हरिजन-चमार युवक जब बेगार कर देने से मना कर देते हैं और गांव के चौधरियों के खिलाफ सत्याग्रह छिड़ देते हैं , तब अंततः उन्हें झुकना पड़ता है क्योंकि चौधरी लोग गांव की नाकाबन्दी करते हैं और उन्हें कुदरती हाजत तक के फांके पड़ जाते हैं ।

गांव में चमारों की बस्ती अलग , गांव से कुछ बाहर होती है , जिसे `चमरही` , `चमादड़ी` , `चमरौटी` या `चमटौली` आदि कहा जाता है । उनके मकान बड़े गंदे होते हैं । उसमें किसी प्रकार की कोई सुख-सुविधा नहीं होती । "धरती धन न अपना " के बाबा फत्तू के मकान में बाढ़ का पानी घुस आता है , और वह लगभग गिरने को हो आता है , परंतु एक वृक्ष के गिर जाने से पानी का बहाव गांव की तरफ हो जाता है , तब नाले पर के बांध को तोड़ दिया जाता है । यदि ऐसा न होता तो चमादड़ी के सभी घरों में पानी घुस जाता ।

गांवों में अधिकांश लोगों के मकान कच्चे व घासफूस के होते हैं । अतः पक्का मकान वहां प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है । पक्का मकान बनवाने के चक्कर में कई बार लोग कर्जदार तक हो जाते हैं । ईंट और मिट्टी के गारे का पक्का मकान उनकी महत्त्वाकांक्षा की चरम सीमा है । " धरती धन न अपना " का काली अपनी सारी कमाई इसी में फूंक देता है । चाची प्रतापी ईंटें ढोते-ढोते मर जाती है । रही-सही रकम चोरी चली जाती है और काली ढाक के तीन पात की तरह पुनः मजदूरों की पंक्ति में आ बैठता है । ऐसा "जातिगत कुण्ठा"

और "अर्थ-कुण्ठा " से भी होता है । अपने बचपन से गांव के कई तरह के लोगों की तरफ से ये काली जैसे लोग कितने ही प्रकार की अवमाननाओं को देखते-सहते आते हैं , अतः जब उनके पास चार पैसे हो जाते हैं , तब उन पैसों से अधिक कमाने की अपेक्षा , "गांव वालों के दिखा देने की प्रबल इच्छा " उनमें जाग्रत होती है , जो उनसे ऐसे काम करवाती है ।

गांव में बहुत से लोग ऐसे होते हैं जिनके पास मकान तक की जमीन नहीं होती । उनके झोंपड़े जहां खड़े होते हैं , वह जमीन दूसरों की होती है । अतः उन्हें उनसे दबकर रहना पड़ता है , उनकी बेगार करनी पड़ती है और उनकी बेजा अन्यायपूर्ण बातों को भी स्वीकार करना पड़ता है । " धरती धन न अपना " के लेखकीय वक्तव्य में कहा गया है — " जिस भूमि पर वे रहते थे , जिस जमीन को वे जोतते थे , यहां तक कि जिन छप्परों में वे रहते थे , कुछ भी उनका नहीं था । " [51] अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि ग्राम्य-विस्तारों में आवास की समस्या के साथ अन्य भी कई पहलू जुड़े हुए हैं , जो उनकी निर्धनता, विवशता और लाचारी को उजागर करता है ।

उचित शिक्षा का अभाव : वस्तुतः इसकी परिगणना शैक्षिक व सामाजिक समस्या के अंतर्गत होना चाहिए, परंतु यह समस्या जितनी शैक्षिक व सामाजिक है , उससे द्विगुणित आर्थिक है , अतः इस अध्याय के अंतर्गत उसकी चर्चा करना उपयुक्त है । ग्रामीण तबके में शिक्षा का जो अभाव दृष्टिगत होता है , उसके मूल में गरीबी है । जिस प्रकार नगरीय परिवेश में स्लम के बच्चे छुटपन से ही कुछ-न-कुछ करके दो पैसे कमाकर लाते हैं ; उसी प्रकार ग्रामीण तबके में छोटे बच्चे, जिनकी उम्र लिखने-पढ़ने की होती है , शैशवकाल से ही छोटे-मोटे कामों में लग जाते हैं , जिनमें खेती के छोटे-मोटे काम , ढोर-डंगर चराना , जंगल से गोंद, लकड़ियां आदि बिन लाना इत्यादि होते हैं । शैलेश मटियानी के पहाड़ी ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखे गये "हौल-दार " , "एक मूठ सरसों " , "चौथी मुट्ठी " , "चिट्ठीरसैन " , "नाग-वल्लरी " प्रभृति उपन्यासों में ऐसे अनेक बच्चे आते हैं जो इस पढ़ने-लिखने की उम्र में ढोर-डंगर चराते हुए गंदे-अश्लील जोड़ (बिंदई= छंद) गाते रहते हैं । "राग दरबार" , "जल टूटता हुआ " तथा " अलग अलग वैतरणी " में भी ऐसे बच्चे बहुतायत से पाये जाते हैं । जहां पेट के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता

है , वहां पढ़ाई की बात तो पीछे ही छूट जाती है । यहां तो कोई एकलव्य जैसा ही पढ़ सकता है और जाहिर है कि सभी एकलव्य नहीं हो सकते और यह भी गौरतलब है कि एकलव्य भी आखिर तो भील राजकुमार था , सामान्य आदिवासी या भील नहीं ।

गांव के गरीब पिछड़े तबके को जान-बूझकर अशिक्षित रखने की भी एक साजिश-सी चल रही है । गांव के उच्च-वर्गीय जमींदार-महाजनों की यह हरचंद कोशिश होती है कि निम्नवर्गीय पिछड़े तबके के बच्चे शिक्षा से वंचित रहें ; क्योंकि बाद में कोई धर्मनाथ [एक टूटा हुआ आदमी] , कोई काली [धरती धन न अपना] , कोई बिसू [महाभोज] , कोई मास्टर कृष्णा [नागवल्लरी] , कोई बलचनमा [बलचनमा] उनकी छाती पर मूंग दले , यह उन्हें कतई मंजूर नहीं । अतः पहले से ही उनकी टांगों को काट लिया जाता है । अव्वल तो गांव में अच्छी शिक्षा-संस्थाएं होती नहीं , और होती हैं तो उसकी बदइन्तजामी विद्यार्थियों के स्थान पर आवारा लौण्डों को पैदा करती है , जिसे हम "अलग अलग वैतरणी " , "राग दरबारी " , "जहर चांद का ", " उभरते प्रश्न " प्रभृति उपन्यासों में लक्षित कर सकते हैं ।

गांवों में संपन्न उच्चवर्गीय लोगों के बच्चे तो शहरों में पढ़ते हैं । ये लोग हमेशा एक कदम आगे रहते हैं । शहरों में भी संपन्न लोगों के अपने अलग "पब्लिक स्कूल" चलते हैं । इन "पब्लिक स्कूलों" में भी "दून स्कूल " जैसे "एलिट-क्लास " के स्कूल अलग हैं , और फिर योरोप-अमेरिका तो हैं ही । "बल= "जल टूटता हुआ " में सतीश का भाई चन्द्रकान्त शहर जाकर आई.ए.एस. करता है । बलदेवसी शर्मा कृत "प्रवंचना " उपन्यास में जमींदार भूपालसिंह अपने बेटे गोवर्धन को उच्च-शिक्षा हेतु दिल्ली भेज देता है । "जल टूटता हुआ" के महिपसिंह , "अलग अलग वैतरणी " के जैपालसिंह आदि जमींदार शहर से जुड़े हुए हैं । उनके बच्चे शहर में पढ़ते हैं । गांव की शिक्षा में भला उन्हें क्यों रुचि होगी ? और स्थिति की विडंबना यह है कि वही महिपसिंह जिला बोर्ड शिक्षा-बोर्ड के चेयरमैन हैं । "राग दरबारी " के वैद्यजी शिवपालगंज के इण्टरमीजिएट कालेज के मैनेजर हैं । यहां तो मास्टर मोतीराम [राग दरबारी] , सुगन-मास्टर [जल टूटता हुआ] , मास्टर जवाहरसिंह [अलग अलग वैतरणी] , मास्टर हरिन्दर [सूखता हुआ तालाब] जैसे मास्टर ही आदर्श माने जाएंगे जो

जो पढ़ाने के बाहने गांवों में अपनी खेती-बाड़ी को विकसित करने में ही दिन-रात लगे रहते हैं । इस "शिक्षा-बिगाड़-कार्यक्रम" के लिए एक और तरीका अपना रखा है इन भाई लोगों ने । जिसको नाम दिया गया है --- " वतन का लाभ " । दूसरे गांवों में तो शिक्षक फिर भी थोड़ा-बहुत पढ़ाएंगे । अपने गांव में तो वे किसानी और महाजनी ही करेंगे , और उन्हें यह सब करने की खुली छूट देने के लिए उपर्युक्त खूबसूरत-सी दिखने वाली स्कीम के अंतर्गत उनका तबादला उनके अपने गांव में कर दिया जाता है , ताकि सरकारी पैसों से वे अपनी खेतीबाड़ी करते रहें । "राग दरबारी" उपन्यास के मास्टर मोतीराम क्लास में पढ़ाते-पढ़ाते अपने खेतों की तरफ निकल जाते हैं , क्योंकि वे वैद्यजी के खास आदमी हैं और वैद्यजी की ही हिदायत से इस " बच्चे -बिगाड़ " कार्यक्रम में लगे हुए हैं । कोलेज के प्रिंसिपल महोदय इस मास्टर मोतीराम को तो कुछ नहीं कहते और दूसरे मास्टरों--- मालवीय और खन्ना --- के पीछे पड़े रहते हैं । उन्हें बात-बेबात टोकते रहते हैं । उनकी शिकायतें होती रहती हैं , क्योंकि अपेक्षाकृत वे थोड़े निष्ठावान हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह समस्या जितनी शैक्षणिक है , उतनी आर्थिक भी , क्योंकि यहां यह तथ्य गौरतलब है कि आर्थिक दृष्टया विपन्न व विवश होने के कारण ही ग्रामीण तबके के कुछ लोग अच्छी शिक्षा के लाभ से वंचित रह जाते हैं ।

मद्यपान : मद्यपान या शराबनोशी की समस्या भी जितनी सामाजिक है , उतनी आर्थिक भी , क्योंकि साधारणतया यह देखा गया है कि धनवानों की तुलना में गरीब लोग शराब का सेवन अधिक करते हैं । जिन परिस्थितियों में वे रहते और काम करते हैं , वहां दुःख भुलाने के लिए साधारणतः शराब का ही सहारा लिया जाता है । जिन लोगों को कठोर श्रम (Hard-Labour) करना पड़ता है , वे उस कठोर श्रम की यातना भुलाने या श्रम के पश्चात् उसकी थकान मिटाने के लिए शराब का प्रयोग करते हैं । अतः यह समस्या एक आर्थिक समस्या भी है ।

सामान्यतः मदिरा का सेवन करना ही "मद्यपान" कहलाता है , और जो व्यक्ति मदिरा का सेवन करता है वह "मद्यसेवी" (Alchoholic)

कहलाता है । परंतु इलियट व मैरिल का मत है कि थोड़ी मात्रा में और कभी-कभी शराब पीना मद्यपान नहीं माना जाता है । एक समस्या के रूप में अत्यधिक मात्रा में और दिन-रात शराब पीना ही मद्यपान है ।[52] कैमरयाइल्ड का मत भी लगभग इसी प्रकार का है — Abnormal and deleterious habitual is alcoholism ",[53] अर्थात् शराब की असामान्य एवं बुरी आदत ही मद्यपान है । वस्तुतः शराब या शराबनोशी की जो निंदा होती है, उसका मूल कारण गरीबी और निर्धनता है, क्योंकि जहाँ संपन्नता है, वहाँ उसका अधिक Cause भी नहीं है ।

शराब पीने वालों का एक तर्क यह होता है कि शराब जब तक थोड़ी मात्रा में पी जाती है, तब तक उसकी मनाही नहीं होनी चाहिए । किन्तु इस संदर्भ में एक चीनी कहावत उपयुक्त प्रतीत होती है — " शराब पीना आरंभ करते समय आदमी शराब पीता है, उसके बाद शराब शराब को पीती है और अंत में शराब व्यक्ति को पी जाती है ।[54]"

"कब तक पुकारूँ " करनटों के आर्थिक शोषण, सामाजिक पतन एवं उनकी दीन-हीन अवस्था को चित्रित करने वाला उपन्यास है । उपन्यास का नायक सुखराम जब-तब शराब का आसरा लेता है, क्योंकि करनटों के साथ, उनकी स्त्रियों के साथ, रात-दिन जो अमानुषी व्यवहार होता रहता है, वह निरंतर उसे कचोटता है — " ये दुनिया नरक है । हम गन्दे कीड़े हैं । तूने यह संसार ऐसा क्यों बनाया है, यहाँ आदमी कटता है तो उसके लिए दर्द तक नहीं होता । यहाँ पाप इतना बढ़ गया है कि गरीब और कमीना आदमी कौड़ी बनकर अपने पेट के लिए अपनी अच्छी देह को गंदा बना लेता है । यहाँ एक आदमी देवता है, पर हम तो कमीन हैं । वो बड़े लोग क्यों कहते हैं ऐसा? क्या वे अपने धन और हुकूमत के लिए आदमी पर अत्याचार करने में काँपते हैं ? तू चुप है । तू जवाब नहीं देती । नट की छोरी पर जवानी आती है और गन्दे आदमी उसे बेइज्जत करते हैं, फिर भी वह रंडी की तरह जिए जाती है । मर क्यों नहीं जाती ? हम सब मर क्यों नहीं जाते ? "[55]

"कब तक पुकारूँ " में करनटों के जीवन की शोषण-लीला का चित्रण है तो "नदी फिर बह चली " में कहार जाति की दीन-हीन अवस्था का चित्रण मिलता है । इन जातियों में शराब पीना एक आम बात होती है ।

यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी शराब पीती हैं । सामाजिक प्रसंगों में , शादी-ब्याह तथा जातिगत पंचायतों में सगे-संबंधियों तथा बिरादरी के लोगों को शराब पिलाई जाती है । परबतिया के यहाँ जो पंचायत बैठती है , उसमें भी यही सब चलता है । परबतिया के पति जगलाल की शराबनोशी का मूल इसी ग्रामीण-जीवन के भीतर देखा जा सकता है । जो अंततोगत्वा उसके परिवार को ले डूबता है ।

"राग दरबारी" उपन्यास का जोगनाथ हमेशा शराब के नशे में चूर रहता है । उसके आगे-पीछे कोई नहीं है । शराब पिलाकर इससे कैसा भी काम करवाया जा सकता है और वैद्यजी उसका उसी रूप में प्रयोग करते हैं । इसीलिए तो जोगनाथ को पकड़ने से अधिकारी डरते हैं । एक बार एक नया दारोगा जब अपने सिपाहियों से कहता है कि इसे दफा 100 के अंतर्गत हवालात में बन्द कर दो , तब एक सिपाही धीरे से कहता है — " हुजूर ! बेमतलब झंझट में पड़ने से क्या फायदा ? अभी गाँव चलकर इसे इसके घर में ढकेल आयेंगे । इसे हवालात कैसे भेजा जा सकता है ? वैद्यजी का आदमी है । " 56 और यह सुनते ही दारोगाजी ठंडे पड़ जाते हैं । इसी उपन्यास में जोगनाथ की पियक्कड़-स्थिति का एक चित्र है — " लोगों ने जोगनाथ को उठाकर उसके पैरों पर खड़ा किया, पर जो खुद अपने पैरों पर खड़ा नहीं होना चाहता उसे दूसरे कहाँ तक खड़ा करते रहेंगे । इसलिए वह लड़खड़ाकर एक बार फिर गिरने को हुआ , बीच में रोका गया और अंत में गड्ढे के ऊपर आकर परम हंसों की तरह बैठ गया । बैठकर जब उसने आँखें मिला-मिला कर , हाथ हिलाकर चमगादड़ों और सियारों की कुछ आवाजें गले से निकाल कर अपने को मानवीय स्तर पर बात करने लायक बनाया तो उसके मुँह से फिर वही शब्द निकले — कौन है सर्फाला ? .... दरोगाजी ने पूछा , " यह कौन-सी बोली है ? " एक सिपाही ने कहा , " बोली ही से तो हमने पहचाना कि जोगनाथ है । वह सर्फरी बोली बोलता है । इस वक्त होश में नहीं है । इसलिए गाली बक रहा है । " 57

इसी "राग दरबारी " उपन्यास में नशाखोरी का एक दूसरा रूप भंग और अफीम के रूप में मिलता है । वैद्यजी भंग के पक्षधर हैं , तो रामाधीनभीखम खेड़वी अफीम के प्रचारक एवं विक्रेता हैं । गाँव के ये दोनों नेता अपने-अपने ढंग से इन शस्त्रों का उपयोग गाँव के लोगों पर कर रहे हैं । वैद्यजी

के अनुसार सारे रोग ब्रह्मचर्य के नाश से पैदा होते हैं और ब्रह्मचर्य की रक्षा तथा वीर्य-वृद्धि के लिए भंग को वे अत्यंत आवश्यक बताते हैं । एक ~~सकव-पर-कोलेव~~ स्थान पर कोलेज के प्रिंसिपल महोदय को भंग पीने का आग्रह करते हुए वे कहते हैं —
" भंग तो नाम मात्र को है । है , और नहीं भी है । वास्तविक द्रव्य तो बादाम , मुनक्का और पिस्ता है । बादाम बुद्धि और वीर्य को बढ़ाता है । मुनक्का रेचक है । इसमें इलायची भी पड़ी है । इसका प्रभाव शीतल है । इससे वीर्य फटता नहीं , ठोस और स्थिर रहता है । मैं तो इसी पेय का एक छोटा-सा प्रयोग रंगनाथ पर भी कर रहा हूं । " [58]

<u>वेश्यावृत्ति की समस्या</u> : पूर्ववर्ती विवेचन में यह स्पष्ट किया गया है कि वेश्यावृत्ति की समस्या जितनी सामाजिक है , उतनी ही आर्थिक भी है , क्योंकि सामान्यतया कोई भी स्त्री इस चेतना-ध्वंसी मार्ग पर स्वेच्छा से नहीं चल पड़ेगी । इस मार्ग पर उसे लाती हैं परिस्थितियां । और ये परिस्थितियां प्रायः आर्थिक ही होती हैं । अपने यहां कहा गया है — " बुभुक्षितः किम् न करोति पापम् " , सो यथार्थ ही है । पेट की आग जो न करावे सो कम है । मनुष्य बुरा नहीं है , यह क्षुधा , यह भूख बुरी है । करणीयाकरणीय का बोध लुप्त हो जाता है ।

इस संदर्भ में प्रसिद्ध समाज-मनोवैज्ञानिक जियोफ्रे का अभिमत है कि " वेश्या-वृत्ति विश्व का सबसे पुराना व्यवसाय है और यह तभी से चला आ रहा है जब से कि समाज के लोगों की काम-भावनाओं को विवाह और परिवार में सीमित किया गया है । " [59] परिवार एवं विवाह जैसी संस्थाओं को जन्म देने में मानव की यौन-इच्छा की संतुष्टि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है । यद्यपि परिवार एवं विवाह के बाहर भी यौन-तुष्टि का कार्य सभी समाजों एवं कालों में प्रचलित रहा है किन्तु इस प्रकार के मानव-व्यवहार को समाज ने ड उचित नहीं ठहराया । वेश्या-वृत्ति को यौन-तृप्ति का एक विकृत , अप्राकृत एवं घृणित साधन ही माना जाएगा । इससे व्यक्ति का शारीरिक एवं नैतिक अधःपतन होता है । वेश्या-वृत्ति को परिभाषित करते हुए इलियट तथा मैरिल ने लिखा है — " प्रोस्टिट्यूशन इज़ एन इलिसिट सेक्स युनियन ओन ए प्रोमिसक्युअस एण्ड मर्सीनरी बेजिस विथ एकंपनिंग इमोशनल इनडिफरन्स . " [60] अर्थात् वेश्या-वृत्ति एक भेद-रहित और धन के लिए स्थापित किया गया अवैध यौन-

संबंध है जिसमें भावात्मक उदासीनता होती है । विख्यात कामशास्त्री हेवलोक एलिस के मतानुसार — " प्रोस्टिट्यूट इज़ वन हू ओपनली एबण्डनंस हर बोडी टू ए नंबर आफ मेन विधाउट चोइस, फोर मनी . "[61] अर्थात् वेश्या वह है जो अपने शरीर को बिना किसी विकल्प के पैसों के लिए कई लोगों को मुक्त रूप से उपलब्ध कराती है । डा० जियोफ्रे के अनुसार " प्रोस्टिट्यूशन इज़ द प्रैक्टिस आफ हेबिच्युअल , इण्टरमिटण्ट सेक्सुल युनियन, मोर ऑर लेस प्रोमिक्युअस फोर मर्सीनरी इण्ड्यूसमेण्ट . "[62] अर्थात् वेश्यावृत्ति आदतन या कभी-कभी बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के साथ धन के लिए किया गया लैंगिक सहवास है । एक अन्य अर्थ-शास्त्री बोंगर महोदय के अनुसार — " धोज़ विमेन आर प्रोस्टिट्यूट्स हू सेल देर बोडिज़ फोर द एक्सरसाइज़ आफ सेक्सुल एक्ट्स एण्ड मेक आफ धिस ए प्रोफेशन . "[63] अर्थात् वे स्त्रियाँ वेश्याएं कहलाती हैं जो अपने शरीर को यौन-क्रियाओं के लिए बेचती हैं और इसे एक व्यवसाय बना लेती हैं ।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इसके पीछे के आर्थिक कारणों के अस्तित्व को नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता । जब स्त्रियाँ अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति अन्य साधनों से करने में असमर्थ हो जाती हैं, तब विवश होकर वे वेश्या-वृत्ति को अपना लेती हैं । बच्चों के पालन-पोषण के लिए भी कई बार स्त्रियों को यह घृणित कर्म करना पड़ता है । शैलेश मटियानी कृत "चौथी मुट्ठी " की तिमा मस्तानी बच्चों के पालन-पोषण हेतु वेश्या-वृत्ति, चोरी आदि को अपनाती है ।

लिग आफ नेशन्स की एडवाइज़री कमिटि का मत है कि गरीबी, कमस्थान, कम आय तथा भीड़ कुछ ऐसे कारण हैं जिनके कारण औरतें वेश्या-वृत्ति करती हैं ।[64] डा० एस.डी. पुनेकर ने अपने बम्बई सर्वेक्षण में 72 प्रतिशत मामलों में वेश्या-वृत्ति के लिए गरीबी को उत्तरदायी ठहराया है ।[65] गरीबी, तंगदस्ती एवं भूखमरी के कारण गांवों से लड़के ही नहीं भागते, लड़कियां भी भाग आती है । पर वे शहर के फुटपाथों पर सामान्यतः नज़र नहीं आतीं, क्योंकि उन्हें फुटपाथ पर पहुंचने से पहले ही वेश्यालयों में पहुंचा दिया जाता है । एक अनुमान के अनुसार इस समय बम्बई के वेश्यालयों में तकरीबन 20 प्रतिशत बच्चियां हैं ।[66]

स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में ऐसी अनेक स्त्रियां मिलती हैं, जिन्हें आर्थिक विवशताओं के कारण वेश्या-वृत्ति करनी पड़ती हैं। ये वेश्याएं नगरों की भांति प्रकट रूप में न होकर अप्रकट रूप में होती हैं। राम-दरश मिश्र कृत " सूखता हुआ तालाब " में शिवलाल, दयाल तथा मास्टर धर्मेन्दर तीनों चेनइया चमारिन से शारीरिक संबंध रखते हैं क्योंकि आर्थिक दृष्टया चेनइया के परिवार को इन लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। विधुर शिवलाल हमेशा अपनी हलवाहिनों से फंसा रहता है और हलवाहिनें शिवलाल को यह छूट देती हैं क्योंकि उनके पति शिवलाल पर निर्भर हैं और उनके ऐसे व्यवहार से उन्हें कुछ अतिरिक्त आय हो जाती है, दूसरे उन्हें थोड़ा रहम-नज़र से देखा जाता है।

रांगेय राघव कृत " कब तक पुकारूं " के करनट जरायम पेशा कहे जाने वाले खानाबदोश हैं। वे तरह-तरह के खेल दिखाकर पैसे कमाते हैं। कभी-कभी चोरी भी करते हैं। उनकी स्त्रियां भी शरीर बेचकर पैसे कमाती हैं। उनका व्यवसाय दूसरों की कृपा पर अवलंबित है, अतः उनकी स्त्रियों को चाहे-अनचाहे दूसरे लोगों से अनैतिक संबंध रखने पड़ते हैं। कालान्तर में यह किसी जाति-विशेष की प्रकृति बन जाती है। फिर उन्हें इसमें कुछ अनुपयुक्त या अनैतिक नहीं लगता। वह उनकी जीवन-शैली का एक अंग बन जाता है। उनकी स्त्रियों से संबंध स्थापित करने के लिए पुलिस भी उन्हें झूठे केसों में फंसाकर हवालात में बन्द कर देती है। सुखराम की मां बेला दारोगा करीम खां से यौवन का सौदा करके पति को पुलिस के पंजे से छुड़ाती है। उसके बाद वह अनेक पुरुषों से संबंध रखके पैसे कमाती है क्योंकि स्त्री की पवित्रता तो लुट ही गई, एक से किया तो क्या, दो से किया तो क्या ? सोनो, मलूको, गुजरी, कम्पूरी, रामा की बहू, प्यारी आदि स्त्रियां यही सब काम करती हैं। सत्तमखां, बांके, सरदार, करीमखां आदि ने कितनी ही लड़कियों के साथ ऐसे काम किए हैं। विवाह के पश्चात् खेल दिखाते समय दरोगा सत्तमखां प्यारी पर मोहित हो जाता है और उसे प्रणय-लीला के लिए बुलाता है, तब प्यारी सुखराम के भय से इन्कार कर देती है, क्योंकि सुखराम और करनटों की तरह इसे सामान्य रूप से नहीं लेता। उसकी चेतना औरों की तुलना में कुछ विकसित है। तब प्यारी की मां उसे समझाती है कि " अरि ये तो औरत के काम हैं। उसे बताने की जरूरत ही क्या है। xxx औरत का काम औरत का काम है। उसमें बुरा-भला क्या है ?[67]"

फणीश्वरनाथ रेणु के "मैला आंचल " में भी इस प्रकार की अप्रकट वेश्या-वृत्ति को चित्रित किया गया है । रमपियरिया की माँ के संबंध सात बेटों के बाप छित्तन से है , तो फुलिया की माँ ' सिंधवा की रखैली ' मानी जाती है । नोखे की स्त्री रामलगनसिंह के बेटे से फंसी हुई है । उचितदास की बेटी कोयर टोली के सबटन मेहतो से शारीरिक रूप से जुड़ी हुई है । फुलिया माँ के आग्रह एवं संमति से सहदेव मिसर की आग बुझाती है । इस संबंध में रमजूदास की पत्नी फुलिया की माँ से कहती है -- " तुम लोगों को न तो लाज है न शरम । कब तक बेटी की कमाई पर लाल किनारी वाली साड़ी चमकाओगी ? आखिर एक हद होती है किसी बात की । मानती हूँ कि जवान बेवा बेटी दुधार गाय के बराबर है । मगर इतना मत दूहो कि देह का खून भी सूख जाय[68] "

हिमांशु श्रीवास्तव कृत " नदी फिर बह चली " मिश्रित परिवेश का उपन्यास है । उसमें पटना के समीपवर्ती गांवों में चलने वाली सस्ती वेश्यावृत्ति का चित्रण मिलता है । यहाँ "कमलवा" हो चाहे "सरदावा" , हर माल दो रुपये चार आने मिलता है । पुआल पर टाट और तकिये के बदले में हर बिछावन पर एक-एक ईंट । रात होती है तो माटी के बने ताखे पर मिट्टी का दीया जल जाता है । सुबह से रात के दस बजे तक यह काम चलता रहता है ।[69]

संक्षेप में तात्पर्य यह कि ग्रामीण परिवेश की अनेक स्त्रियों को आर्थिक विवशता के कारण वेश्यावृत्ति का गर्हित जीवन जीना पड़ता है । " नदी फिर बह चली " में प्रकट वेश्यावृत्ति को बताया गया है । बड़े नगरों के समीपवर्ती गांवों तथा नेशनल हाई वे पर के गांवों में वेश्याओं के ऐसे प्रकट समूह मिलते हैं ; अन्यत्र अधिकांशतः उनके अप्रकट समूह मिलते हैं ।

नव-धनिक वर्ग : स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में धनिकों का एक नया वर्ग -- नव-धनिक वर्ग उभरा है । वैसे तो यह भ्रष्ट राजनीति की उपज है , किन्तु ग्रामीण पिछड़ी जातियों के आर्थिक शोषण में उनका उत्तरदायित्व कम नहीं है , अतः यहाँ उन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है । यह वर्ग स्वतंत्रता के बाद पनपा है । पुलिस तथा सरकारी अधिकारियों से साँठ-गाँठ करके अवैध व्यवसायों के

द्वारा उन्होंने खूब पूंजी कमाई है । पुराने धनिकों तथा जमींदारों में तो कहीं संस्कार जैसी चीज़ भी मिलती थी , परंतु इस नव-धनिक वर्ग के पास न परंपरा है न संस्कार । अतः गांवों में खुले सांड की तरह वे डोलते रहते हैं । पैसा ही उनकी ताकत है , और पैसे के सामने वे किसी को नहीं गिनते । उनकी औलादें तो और भी गयी-गुजरी होती हैं — बाप सेर तो बेटा सवासेर । " जल टूटता हुआ" के दौलतराय तथा दीनदयाल , "राग दरबारी" के वैद्यजी तथा रामाधीन-भीखम खेड़वी , " जुलूस " का तालेवर गोढ़ी , " धरती धन न अपना " का मुंशी चौधरी , "आधा गांव " के परसराम तथा रमजान जुलाहा प्रभृति लोग इस नव-धनिक वर्ग के अंतर्गत आते हैं ।

पुलिस और न्याय-तंत्र की लूट-खसोट : पुलिस और न्याय-तंत्र के कारण भी ग्रामीण लोगों का आर्थिक शोषण होता रहता है । अशिक्षित होने के कारण ग्रामीण लोग पुलिस से बहुत डरते हैं और गांव के कुछ लोग जिनकी पुलिस से सांठ-गांठ होती है , वे उनकी इस कमजोरी का फायदा उठाते हैं । गांव के धनी-मानी लोग पुलिस के अधिकारियों से हमेशा अच्छे संबंध रखते हैं । जो भी नया अधिकारी आता है , उससे वे अपना दोस्ताना ताल्लुकात बना लेते हैं , और फिर उनके जरिए गरीब और कमजोर लोगों को दुहते रहते हैं । यही कारण है कि वे गांव में निरंतर फौजदारियां होतीं रहें उसकी पैरवी में रहते हैं । जगदीश चन्द्र के उपन्यास " कभी न छोड़े खेत " में ग्रामीण शोषण के इस कोण को लेखक ने भलीभांति समेकित किया है । पुश्तैनी दुश्मनी केवल नीलेवालियों और नम्बरदारों में है , ऐसा नहीं है । हिन्दुस्तान के प्रत्येक गांव में जाटों,नम्बरदारों, गूजरों ,यादवों, ठाकुरों आदि मध्यवर्गीय किसानों में पुश्तैनी दुश्मनी की आग को कभी बुझके ठण्डी नहीं पड़ने दी जाती । जिस प्रकार बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे-छोटे देशों को लड़ाते रहते हैं , क्योंकि उसी के कारण उनकी सत्ता-धाक बनी रहती है और चांदी तो है ही ; उसी प्रकार गांव के धनी-संपन्न लोग भी चाहते रहते हैं कि कुछ लोगों में निरंतर मार-पीट होती रहनी चाहिए । तभी तो वे उनके पास जाएंगे , उनका लोहा मानेंगे और तभी उनको चूसा भी जा सकता है । चूहे की तरह फूंक-फूंक कर काटा जाएगा । ये किसान लोग मामूली-सी बातों के

लिए खून-खराबा कर देते हैं और फिर थाने में पुलिस के आगे भीगी बिल्ली बन जाते हैं। कई बार तो केवल उन्हें गांव से हथकड़ी न पहनायी जाय, इसी कारण तगड़ी रकम रिश्वत में देनी पड़ती है। इस उपन्यास का हवालदार एक स्थान पर कहता है — "और तो सब ठीक है, लेकिन मेरे लिए दो सौ रूपये कम है। दो सौ रूपये तो हौलदारी के हो गए। दो सौ रूपया कलम-घिसाई का भी होना चाहिए। सारी रिपोर्ट तो मैं ही लिखूंगा। थानेदार तो सिर्फ उस पर दस्तखत करेगा।" 70

इस प्रकार अशिक्षा एवं मूर्खता के कारण उनकी खून-पसीने की गाढ़ी कमाई वे लूट जाते हैं। गरीब लोगों से पैसा वसूल करने के लिए पुलिस जितने क्रूर अमानुषी हथकंडों का प्रयोग करती है, उतना ही उसकी योग्यता में इज़ाफा माना जाता है। तभी तो कहा गया है — "पुलिस में जमातों की नहीं जूतों की ज्यादा जरूरत है।" 71 अपराधी व्यक्ति रिश्वत दे यह तो समझ में आ सकता है, परन्तु यहां तो बहुत-से निरपराध निर्दोष लोग भी पुलिस के चंगुल और जुल्म से बचने के लिए पैसे धर देते हैं, इसीलिए पुलिस का रवैया उनके प्रति और भी कठोर होता जा रहा है।

"नदी फिर बह चली" में एक बच्चा आम के बगीचे में घुस जाता है। बगीचे की रखवाली करने वाला उसकी बुरी तरह से पिटाई करता है, जिसमें हंसिया लग जाने से उसकी मौत हो जाती है, बाद में पुलिस को रिश्वत खिलाकर यह रिपोर्ट लिखवाई जाती है कि बच्चा वृक्ष पर से लिपसकर नीचे गिरा। गिरते समय हंसिया उसके पेट में घुस गया, जिसके कारण उसकी मौत हुई।

नागार्जुन कृत "इमरतिया" उपन्यास में "जमनिया मठ" की "सिद्धई" में अभिवृद्धि करने हेतु यज्ञ में एक छोटे-से बच्चे की, नव-जात शिशु को यज्ञ-कुण्ड में झोंक दिया जाता है। किसी की शिकायत पुलिस जांच करने आती है, पर मामले को दबा लिया जाता है। लेखक ने इसका बड़ा ही व्यंग्यात्मक चित्र खींचा है — "भरतपुरा की पुलिस के रिकोर्ड में दर्ज हुआ होगा, 'पूजा की आठवीं रात' में जाने कहां किधर से एक पगली आई। उसकी गोद में छः महीने का बच्चा था। पुजारी की नज़र बचाकर उसने बच्चे को हवन-कुण्ड में

डाल दिया । " ... सरकार बहादुर से अर्ज है कि वह जमनिया मठ के संत-शिरोमणी बाबाजी महाराज की प्रतिष्ठा और इज्जत को ध्यान में रखें । "[72]

पुलिस की भाँति हमारा न्याय-तंत्र भी भ्रष्ट एवं रिश्वतखोर होता जा रहा है । रिश्वत देकर न्याय को अपने पक्ष में करवाया जा सकता है । न्याय के मंदिरों में पद-पद पर, और शब्द-शब्द पर रूपये देने पड़ते हैं । "राग दरबारी" उपन्यास के लंगड को एक मामूली-सी नकल के लिए कचहरी के महीनों धक्के खाने पर भी नकल नहीं मिलती क्योंकि नकलनवीश बाबू नकल निकालने का पांच रूपया मांग रहा था, जब कि बकौल लंगड 'रेट' दो रूपये का था । इसी पर बहस हो गई । लंगड ने कसम खाई कि " मैं रिश्वत न दूंगा और कायदे से ही नकल लूंगा, इधर नकल बाबू ने कसम खाई कि मैं रिश्वत न लूंगा और कायदे से ही नकल दूंगा । "[73] और कायदे से नकल किसी को मिली है कि लंगड को मिलेगी । पहले रिश्वत दबी जबान और चोरी-चोरी ली जाती थी । दूसरे लेने और देने वाले दोनों को कुछ तो हिचकिचाहट या झिझक होती थी, परन्तु अब तो उसने एक सामान्य व्यवहार का रूप धारण कर लिया है, इतना ही नहीं, प्रत्युत उसे न्यायोचित ठहराने के प्रयत्न होते हैं । इसी उपन्यास का रूप्पन इसी बात पर व्यंग्य करते हुए कहता है — " एक रिश्वत लेता है तो दूसरा कहता है कि क्या करे बेचारा । बड़ा खानदान है, लड़कियां ब्याहनी हैं । इस प्रकार सारी बदमाशियों का तोड़ लड़कियों के ब्याह पर होता है । "[74]

जगदीशचन्द्र के उपन्यास "धरती धन न अपना"... कभी न छोड़ें खेत " में न्याय-तंत्र की इस रिश्वतखोरी का एक नया रूप दृष्टिगत होता है । डाक्टरों को झूठी रिपोर्ट लिखने के लिए तथा झूठी रिपोर्ट न लिखने के लिए, यों दोनों के लिए, रिश्वत दी जाती है । बड़े-बड़े वकीलों की फिस पांच-पांच हजार रूपये होती है । उपन्यास का एक पात्र एक स्थान पर कहता है — " सरदारजी, माफ करना, उनकी फिस सुनकर आम आदमी तो गश खा जाता है । उनकी फिस पांच हजार से एक पैसा कम नहीं है । "[75] डा० कुंवरपालसिंह के शब्दों में इस मुल्क में सबकुछ हो सकता है, बस उसकी कीमत देनी पड़ती है । जज को रिश्वत देकर फैसला अपने पक्ष में करवा लिया जा सकता है ।[76]

गांवों में कुछ लोग ऐसे भी मिल जाते हैं , जिनका काम ही झूठी गवाही देना होता है । काम हो न हो , वे नियमित रूप से कचहरी जाते हैं *, और वादी या प्रतिवादी से पैसे लेकर झूठी गवाही देते हैं । " धरती धन न अपना " के नत्थासिंह उर्फ थइडम चौधरी झूठी-सच्ची गवाहियां देकर ही अपनी गुजर-बसर करते हैं । [77] "जुलूस" उपन्यास में इस प्रवृत्ति का संकेत देते हुए रेणु लिखते हैं -- " दो घर राजपूत , सौतेले भाई हैं -- दोनों खेती करने के अलावा झूठी गवाही देते हैं और लठैत का काम करते हैं । " [78] "राग दरबारी" उपन्यास के पंडित राधेलाल 'काना' तो मानो गवाही देने की 'प्रेक्टिस' ही करते हैं और "कभी न उखड़ने वाले गवाह " के रूप में पूरे जिले-ज्वार में अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त कर चुके हैं । गवाही और मुकदमेबाजी उनकी आजीविका का एक साधन है । "दीवानी और फौजदारी कानूनों का उन्हें इतना ज्ञान सहज रूप में मिल गया था कि वे किसी भी मुकदमे में गवाह की हैसियत से बयान दे स सकते थे और जिरह में उन्हें अब तक कोई भी वकील उखाड़ नहीं पाया था । जिस तरह कोई भी जज अपने सामने के किसी भी मुकदमें= मुकदमे में फैसला दे सकता है , कोई भी वकील किसी भी मुकदमे की वकालत कर सकता है , वैसे ही पंडित राधेलाल किसी भी मामले के चश्मदीद गवाह बन सकते थे । संक्षेप में , मुकदमेबाजी की जंजीर में भी वे भी जज, वकील , पेशकार आदि की तरह एक अनिवार्य कड़ी थे और जिस अंग्रेजी कानून की मोटर पर चढ़कर हम बड़े गौरव के साथ' रूल आफ लॉ ' की घोषणा करते हुए निकलते हैं , उसके पहियों में वे टाईराड की तरह बंधे हुए उसे मनमाने ढंग से मोड़ते चलते थे । एक बार इजलास में खड़े होकर जैसे ही वे शपथ लेते ' गंगा कसम , भगवान कसम , सच-सच कहेंगे ' वैसे ही विरोधी पक्ष से लेकर मजिस्ट्रेट तक समझ जाते थे कि अब यह सच नहीं बोल सकता । और पर ऐसा समझना बिलकुल बेकार था , क्योंकि फैसला समझ से नहीं कानून से होता है । और पंडित राधेलाल की बात समझने में चाहे जैसी लगे , कानून पर खरी उतरती थी । " [79]

बड़े वकीलों तथा डाक्टरों की तरह इधर कई दिनों से पंडित राधेलाल भी सामान्य प्रेक्टिस न करके विशेषज्ञों वाली प्रेक्टिस करते थे जो अब सिर्फ दीवानी के मुकदमों और उसमें भी उत्तराधिकार के मुकदमों तक सीमित थीं । फौजदारी के मुकदमों में झूठी गवाही के स्तर को कायम रखने के लिए

पिछले कुछ वर्षों में उन्होंने कुछ चेलों को तैयार कर लिया था । उनमें बैजनाथ का स्थान सबसे ऊंचा था । " बैजनाथ भीखमखेड़ा का रहने वाला था , पर आसपास के गांवों में गवाही के उद्देश्य से वह पहले से ही मौजूद माना जाता था । इस तरह उसकी प्रैक्टिस भीखमखेड़ा में ही , आसपास के कई गांवों में जम गई थी । " 80

तात्पर्य यह कि पुलिस और न्यायतंत्र में फैले हुए इस व्यापक भ्रष्टाचार से ग्रामीण तबके के लोगों का आर्थिक शोषण हो रहा है । इन निरंतर चलने वाली मुकदमेबाजियों से उनकी रही-सही जर-जमीन भी धीरे-धीरे खिसकती जाती है । कुछ लोग इसे हमेशा हवा देते रहते हैं , क्योंकि उसीसे उनके हित बंधे हुए हैं ।

धर्म और पूंजीवाद का गठ-बंधन : धर्म और पूंजीवादी गठ-बंधन से भी ग्रामीण तबके के अशिक्षित या अर्धशिक्षित गरीब लोगों का शोषण होता रहा है । बाबा नागार्जुन कृत "इमरतिया " उपन्यास में धर्म और पूंजीवाद के इस गठ-बंधन का बखूबी पर्दाफाश किया गया है । लालताप्रसाद , भगौती प्रसाद , विर्धीचन्द जैसे गांव के जमींदार तथा महाजनों के सहयोग से बाबा जमनिया के मठ की "सिद्धई" का खूब प्रचार-प्रसार होता है , क्योंकि इस मठ की आमदनी से ये सभी लाभान्वित होते हैं । बाबा को तो इसका एक छोटा-सा हिस्सा मिलता है । शेष बड़ा हिस्सा तो इन्हीं लोगों में बंट जाता है । बाबा सच ही कहता है —— " हिन्दू जाति सचमुच गाय होती है , बार-बार दुहे जाओ , बूंद-बूंद निचोड़ लो । फिर भी लात नहीं मारेगी , सींग नहीं चलाएगी । अपनी भोली-भाली जनता को दुहने के लिए भगौती ने हमसे बछड़े का काम लिया । " 81 यह तो सुविदित है कि गाय के थनों में दूध उतारने के लिए पहले बछड़े को छोड़ा जाता है , और बछड़े के कारण गाय के थनों में दूध आ जाता है , तब फिर उसे हटाकर गाय को दुह लिया जाता है । ठीक इसीप्रकार ग्रामीण लोगों की धार्मिक भावनाओं को जगाने के लिए किसी साधु , महात्मा या बाबा का उपयोग किया जाता है , परन्तु बाद में उसका सारा फायदा पूंजीवादी गठ-बंधन को जाता है ।

निष्कर्ष : इस अध्याय के समग्रालोचन के द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं :-

§1§ मानव-जीवन की समस्याएं एक श्रृंखला की नाना कड़ियों के समान होती हैं । एक समस्या दूसरी से जुड़ी हुई रहती है । हमारी बहुत-सी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक समस्याओं का उत्स आर्थिक विषमता या आर्थिक असंतुलन में देखा जा सकता है ।

§2§ दरिद्रता मानव-जीवन की एक मूलभूत समस्या है । स्वातंत्र्योत्तर काल में भी भ्रष्ट राजनीतिक तरीकों के कारण यह दरिद्रता विभिन्न ग्रामीण तबकों में घटने के स्थान पर बढ़ी ही है ।

§3§ वस्तुतः गरीबी स्थिति-सापेक्ष शब्द है, तथापि एक व्यक्ति को अपने तथा अपने आश्रितों के स्वास्थ्य एवं शक्ति को बनाए रखने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उसके सर्वथा अभाव को गरीबी कहा जाएगा । और ग्रामीण परिवेश में प्रायः भूमिहीन मजदूर, लघु और सीमांत कृषक, कारीगर एवं पिछड़े वर्ग के व्यक्ति तथा अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग गरीबी-रेखा के नीचे पाए जाते हैं ।

§4§ जमींदारी प्रथा का सर्वथा उन्मूलन नहीं हुआ है । उसने एक दूसरा रूप अख्तियार कर लिया है ।

§5§ कृषि के औद्योगीकरण से ग्रामीण बेकारी में वृद्धि हुई है ।

§6§ महाजनों तथा जमींदारो द्वारा गांव के निम्न मध्यवर्ग का आर्थिक शोषण आज भी वैसे ही हो रहा है, बल्कि अधिक सूक्ष्म व विधिवत् ढंग से होने के कारण उसकी प्रहारक शक्ति में इजाफा ही हुआ है ।

§7§ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामभित्तीय उपन्यासों में बेकारी की समस्या, आवास की समस्या, अशिक्षा की समस्या, मद्यपान एवं वेश्यावृत्ति की समस्या, पुलिस तथा न्यायतंत्र द्वारा गरीब लोगों को लूटने-खसूटने की समस्या प्रभृति अर्थ से जुड़ी हुई कुछ समस्याओं को रेखांकित किया जा सकता है ।

======= xxxxxxx =======

:: संदर्भानुक्रम ::

§1§ "सूरज का सातवां घोड़ा " : पृ0 77 §2§ "जल टूटता हुआ" : पृ0 43
§3§ वही : पृ0 354 §4§ " राग दरबारी " : पृ0 383 §5§ वही: पृ0 383-384 §6§ सती मैया का चौरा : पृ0 591-592 ।
§7§ "धरती धन न अपना " : पृ0 8 §8§ बलचनमा : पृ0 46
§9§ वही : पृ0 53 §10§ वही : पृ0 100
§11§ व्यंग्य निबंध : " वह जो आदमी है न " : हरिशंकर परसाई ।
§12§ देसाई सतसई /अप्रकाशित :/ : डा0 पारूकांत देसाई ।
§13§ वही §14§ मैला आंचल : पृ0 136 §15§ राग दरबारी : पृ0 41
§16§ धरती धन न अपना : पृ0 27
§17§ द्रष्टव्य : " साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास " : डा0 पारूकांत देसाई : पृ0 101
§18§ " कल्चरल सोशियोलोजी " : गिलिन एण्ड गिलिन : पृ0 638
§19§ " पोवर्टी : इट्स जेनेसिस एण्ड एक्सोडस " : गोडार्ड : पृ0 5 ।
§20§ " इण्डियन सोसियल प्रोब्लेम्स " : डा0 एम. एल गुप्ता : पृ0 171 ।
§21§ देखिए : " सोसियल डिसओर्गेनाइजेशन " : प्रो0 फेरिस ।
§22§ देखिए : " सोसियल डिस ओर्गेनाइजेशन " : इलियट एण्ड मैरिल : पृ0 189
§23§ मैला आंचल : पृ0 187
§24§ "हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना " : पृ0 157 ।
§25§ राग दरबारी : पृ0 191-192 ।
§26§ "इण्डिया टु डे " : प्रीफेस : प्रो0 दत्ता ।
§27§ राग दरबारी : पृ0 23 §28§ वही : पृ0 175-176 ।
§29§ द्रष्टव्य : "जल टूटता हुआ " : पृ0 494-496 ।
§30§ धरती धन न अपना : पृ0 58 §31§ कभी न छोड़ें खेत : पृ0 147 ।
§32§ वही : पृ0 119 §33§ वही : पृ0 131 §34§ इमरतिया : पृ0 111
§35§ वरुण के बेटे : नागार्जुन : पृ0 34 । §36§ वही : पृ0 36 ।
§37§ राग दरबारी : पृ0 90 §38§ वही : पृ0 107 §39§ वही: पृ0 26 ।
§40§ एक काव्यगोष्ठी में सुनी हुई चतुष्पदी : डा0 पारूकांत देसाई ।

§41§ उभरते प्रश्न : पृ0 86 §42§ जल टूटता हुआ : पृ0 398-399 ।

§43§ एक काव्यगोष्ठी में सुनी हुई पंक्तियाँ । §44§ वरुण के बेटे : पृ0 46 ।

§45§ सती मैया का चौरा : पृ0 135 §46§ अलग अलग वैतरणी : पृ0 240 ।

§47§ द्रष्टव्य : "भारतीय सामाजिक समस्याएं" : पृ0 190 ।

§48§ द्रष्टव्य : " हौलदार " §49§ राग दरबारी : पृ0 16 ।

§50§ धरती धन न अपना : पृ0 8 ।

§51§ " सोसियल डिस ओर्गेनाइजेशन " : इलियट एण्ड मैरिल : पृ0 184 ।

§52§ " डीक्शनरी ओफ सोसियोलोजी " : फेयरचाइल्ड : पृ0 8 ।

§53§ " टु बिगिनिंग विथ , द मेन टेक्स द ड्रिंक , धेन द ड्रिंक टेक्स द ड्रिंक , एण्ड फाइनली द ड्रिंक टेक्स द मेन ,. " ए चाइनिज सेयिंग ।

§54§ कब तक पुकारूँ : पृ0 378 §55§ राग दरबारी : पृ0 85 §56§ वही:पृ084

§57§ वहीं : पृ0 46 ।

§58§ एनसायक्लोपीडिआ ओफ सोसियल साइन्सिस 1935 : प्रोस्टिट्यूशन ।

§59§ सोसियल डिसओर्गेनाइजेशन : इलियट एण्ड मैरिल : पृ0 155 ।

§60§कोटेड बाय हैवलोक एलिस : सेक्स इन रीलेशन टु सोसायटी : पृ0 155 ।

§61§ एनसायक्लोपीडिआ ओफ सोसियल साइन्सिस : वोल्युम 11-12 : मेज्योफ्रे : पृ0 553 । §62§ क्रिमिनालिटी एण्ड इकोनोमिक कण्डिशंस : बांगर :पृ. 152

§63§ देखिए : कमिटी रिपोर्ट : पार्ट -3 : मैथड्स आफ रिहेबिलिटेशन आफ एडल्ट प्रोस्टिट्यूट्स : पृ0 7 ।

§64§ ए स्टडी आफ प्रोस्टिट्यूट्स इन बोम्बे-1962 : डा0 एस.डी. पुनेकर : पृ0 235

§65§ लेख : " हर शहर में फुटपाथ है और फुटपाथ पर है ज़िन्दगी " : संजय गासूम : धर्मयुग : फरवरी : 1991 ।

§66§ कब तक पुकारूँ : पृ0 43 । §67§ मैला आँचल : पृ0 62-63 ।

§68§ द्रष्टव्य : नदी फिर बह चली : पृ0 278 ।

§69§ कभी न छोड़ें खेत : पृ0 49 §70§ वहीं : पृ0 71 §71§ इमरतिया:पृ. 22

§72§ राग दरबारी : पृ0 47 §73§ वही : पृ0 48

§74§ कभी न छोड़ें खेत : पृ0 109

§75§ " हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना : पृ0 189 ।

§76§ द्रष्टव्य : धरती धन न अपना : पृ0 99-100 । §80§ इमरतिया: पृ0 111

§77§ जुलूस:पृ0 13 §78§ राग दरबारी : पृ0 92-93 §79§ वही : पृ0279